वर्ष ४२] * * * [अङ्क ६

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

संस्करण १,५०,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर आषाढ़ २०२५, जून १९६८

चित्र-सूची

वार्षिक मूल्य भारतमें ९.०० विदेशमें १३.३५ (१५ शिलिंग) } जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥ { साधारण प्रति भारतमें ५० पै० विदेशमें ८० पै० (१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री

मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर
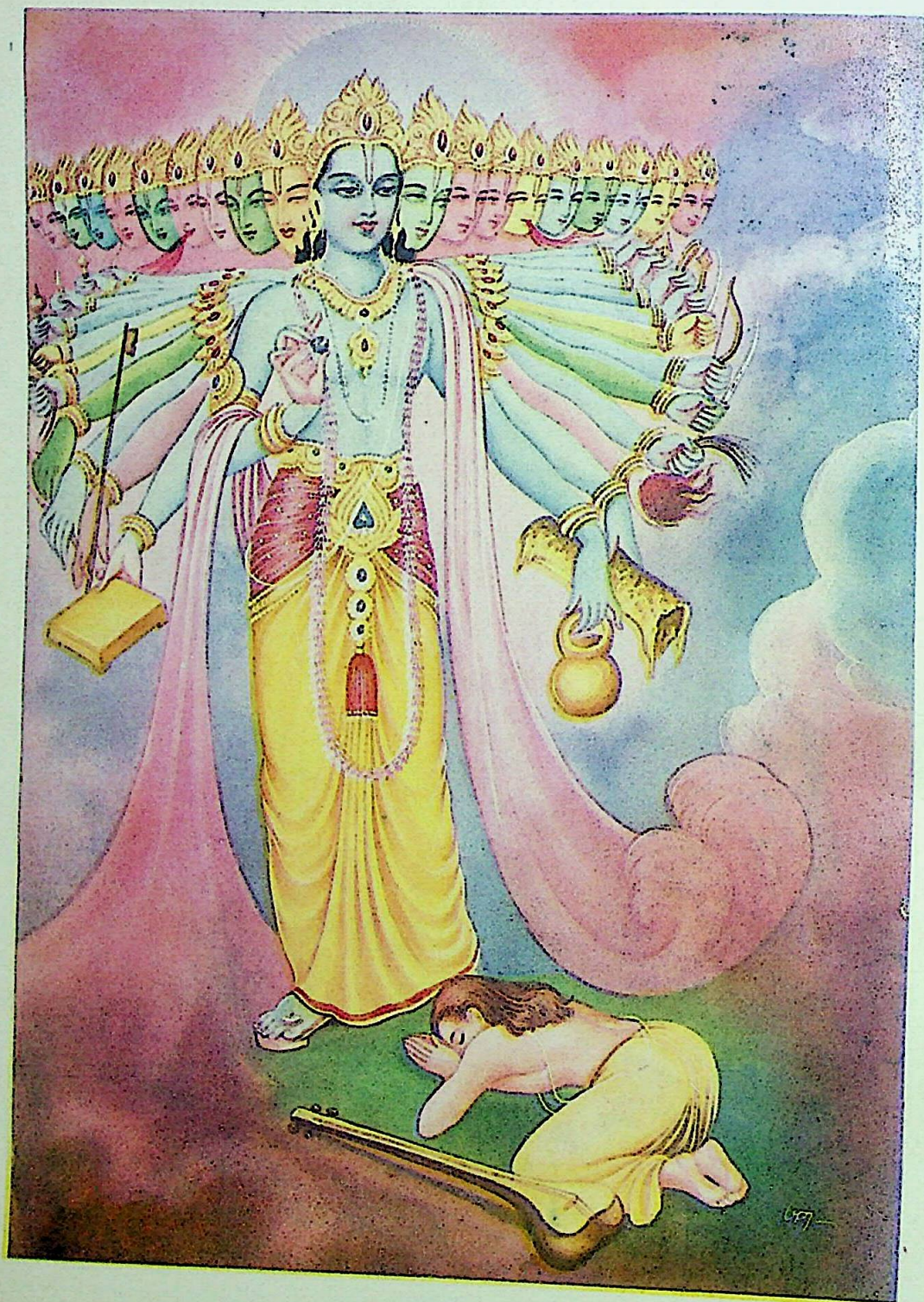
नारदको विराट्रूप-दर्शन

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
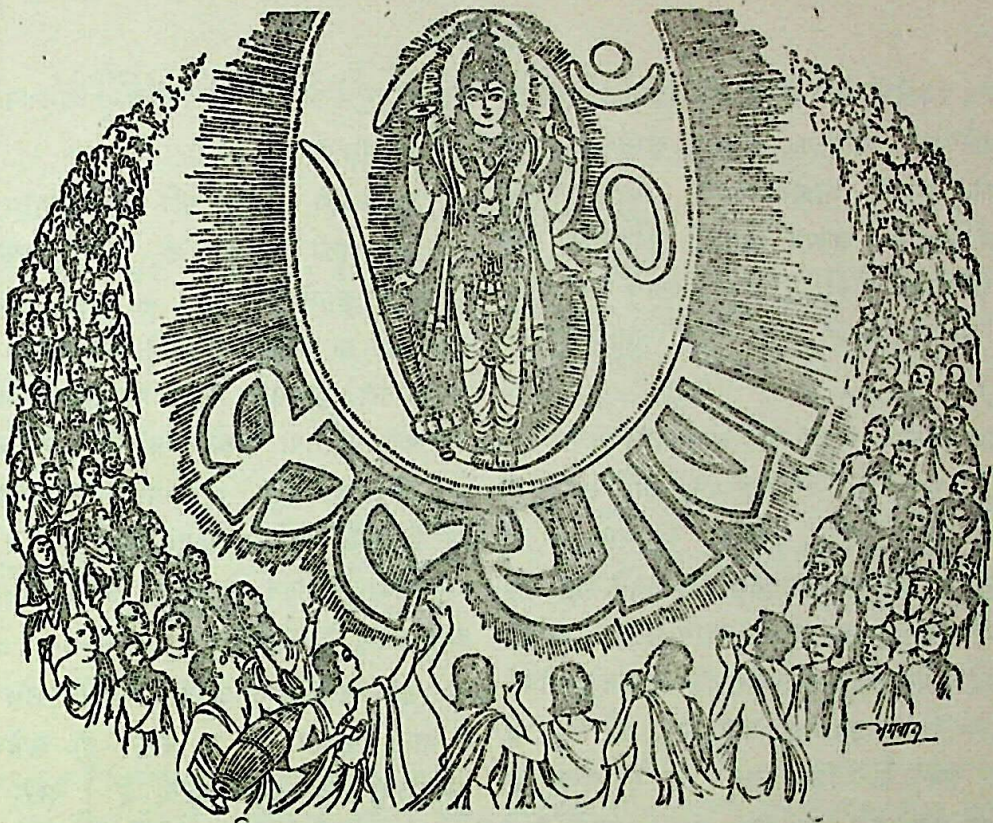
त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥

वर्ष ४२	गोरखपुर, सौर आषाढ़ २०२५, जून १९६८	संख्या ६ पूर्ण संख्या ४९९

नारदको विराट्रूप-दर्शन

श्वेतद्वीपमें जा नारदने चुनकर हरिके दो सौ नाम।
दर्शन हेतु गुह्य उन नामोंसे की स्तुति अत्यन्त ललाम ॥
हो प्रसन्न, हो गये प्रकट प्रभु विश्वरूप विस्मयकर धार।
नील-पीत-स्वर्णाभ-हरित-कज्जलसम-उज्ज्वल वर्ण अपार ॥
नेत्र-कर्ण-मस्तक-कर-पद-कटि-उदर आदि अगणित अभिराम।
लिये करोंमें कुशा, कमण्डलु, दण्ड, रत्नमणि शोभाधाम ॥
भक्तिप्रणत मनसे नारदने प्रभु-चरणोंमें किया प्रणाम।
मुदित चित्त प्रभुने दुर्लभ दे वर कर दिये पूर्ण सब काम ॥

(महाभारत, शान्तिपर्व)

कल्याण

याद रक्खो—वही मनुष्य उच्च स्तरपर पहुँचता है, जो प्रतिदिन, प्रतिक्षण, प्रतिपद अपनेको—अपनी बुद्धिको, मनको, आचार-विचारको उच्चतम स्तरपर चढ़ाता रहता है। अतएव निरन्तर सावधानीके साथ पवित्र विचारोंको—विशुद्ध भावोंको बनाते और बढ़ाते रहो। कभी प्रमाद मत करो, कभी असावधान मत होओ।

याद रक्खो—विशुद्ध भाव तथा पवित्र विचार तभी समझे जा सकते हैं, जब मनुष्यके द्वारा सहज ही दूसरोंको सुख पहुँचे, दूसरोंका हित-सम्पादन हो तथा इस पर-हित-सुख-सम्पादनरूप सन्मार्गके द्वारा वह मनुष्यजीवनके एकमात्र लक्ष्य भगवान्‌की ओर अग्रसर होता रहे। पर-सुख-हितका सम्पादन कर्तव्यके बोधसे नहीं, न किसी प्रकारका प्रत्युपकार, प्रतिफल या पुरस्कार पानेके लिये किया जाय। वह स्वाभाविक ही मनमें हर्ष बढ़ानेवाला प्रिय कार्य हो। उसके किये बिना रहा न जाय।

याद रक्खो—व्यवहारमें सत्यता, वाणीमें मधुरता और नम्रता, बर्तावमें सरलता, विचारमें पर-हितका लक्ष्य, इन्द्रियोंमें संयम, बुद्धिमें नित्य-सत्य-विवेक आदि उत्तरोत्तर सहजरूपसे बढ़ते रहें, पर कहीं भी किसी प्रकारका अभिमान न आने पाये।

याद रक्खो—संयम, त्याग, प्रेम, सेवा, सद्-व्यवहार आदि सद्गुण तो सदा बढ़ते रहने चाहिये; परंतु यदि इनका अभिमान जरा भी आ गया तो ये सद्‌गुण रहेंगे नहीं। वह अभिमान अपनी मात्राके अनुसार सारे सद्‌गुणोंका न्यूनाधिकरूपमें नाश करता रहेगा, अन्तमें अभिमानमात्र रह जायगा। सद्‌गुण चले जायँगे। अतएव समस्त सद्‌गुणोंका नाश और समस्त दुर्गुणोंका विकास करनेवाले अभिमानसे सदा बचे रहो।

याद रक्खो—अपनेमें यदि कोई सद्‌गुण हैं तो वह भगवान्‌की सम्पत्ति है—दैवी सम्पत्ति हैं, भगवान्‌की कृपासे मिली हैं। भगवान्‌की इस कृपाके लिये सदा भगवान्‌के कृतज्ञ रहो और अपने दैन्यको प्रत्यक्ष देखते हुए उस महान् भगवत्कृपाका और भी दृढ़ अवलम्बन तथा आश्रय प्राप्त करो। फिर अभिमान-का उदय नहीं होगा। पद-पदपर भगवान्‌की कृपा दिखायी देगी, उत्तरोत्तर सद्‌गुण बढ़ते रहेंगे। जीवन भगवान्‌का मूर्तिमान् सेवास्वरूप बनकर परम पवित्र तथा सफल हो जायगा।

याद रक्खो—जो अपनेको वास्तवमें उच्च स्तरपर ले जाना चाहता है, वह सहज ही सर्वोच्च तत्त्व भगवान्‌का आश्रय ग्रहण करता है। सारी उच्चता, महानता, पवित्रता, सुख-समृद्धि, दैवीसम्पत्ति भगवान्‌से ही आती है; भगवान् ही उन सबके अनन्त निधि हैं। भगवान्‌को छोड़कर जो अन्य प्राणी-पदार्थ-परिस्थितिका आश्रय लेता है, वह उस प्राणी-पदार्थ-परिस्थितिके स्वभाव-गुणको ही प्राप्त होता है। और भगवान्‌को छोड़कर शेष सभी कुछ दोषमय तथा दुःखपरिणामी हैं।

याद रक्खो—भगवान् ऐसे सुदृढ़ अवलम्बन हैं कि उनका आश्रय लेनेवाला कभी गिरता नहीं, भगवान् उसकी पूरी देख-रेख, सँभाल रखते हैं; पर भगवान्‌के स्थानपर जो अभिमानका आश्रय ले लेता है, वह निश्चय ही गिरता है—चाहे उसने अभिमानका नाम भी भगवान् रख छोड़ा हो; अतएव नित्य-निरन्तर सर्व-शक्तिमान्, सर्वज्ञ, परम सुहृद् भगवान्‌का आश्रय करके अपने-आपको उठाते रहो। कभी गिराओ मत।

'शिव'

ब्रह्मलीन परमपूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृतोपदेश

(महात्मा बननेके साधन—तत्परता, श्रद्धा और आज्ञापालन)

[आपके एक पुराने प्रवचनके आधारपर लिखित]

परमात्माकी प्राप्तिमें प्रधान बात है—तत्परतासे साधन करना। व्यवहारका काम भी खूब तत्परतासे करना चाहिये। संसारमें ऐसा कोई भी काम नहीं है, जो प्रयत्नसाध्य न हो। हाँ, प्रयत्नकी सफलतामें परमात्माकी कृपा समझनी चाहिये, जिससे अभिमान न आये।

ईश्वर-प्राप्तिकी योग्यता सबमें है। योग्यता न होती तो भगवान् मनुष्यशरीर देते ही नहीं। मनुष्यशरीरमें सबको भगवत्प्राप्तिका जन्मसिद्ध अधिकार है। ऐसे मनुष्य-शरीरको पाकर जो भगवान्‌की प्राप्ति नहीं करता, वह अपने मस्तकपर जो भगवान्‌का कृपामय हाथ है, उसे हटा देता है। इसलिये मनुष्यको भगवत्प्राप्तिके लिये तत्परतासे प्रयत्न करना चाहिये।

मनुष्यको कभी निकम्मा नहीं रहना चाहिये। कर्मशील मनुष्यकी सब जगह पूछ है। अकर्मण्यकी कहीं भी पूछ नहीं। परमेश्वर दीनका भी साथी है, मूर्खका भी साथी है, पापीका भी साथी है; पर वह अकर्मण्यका साथी नहीं। अतः भूतकी ज्यों खूब काम करे। एक कल्पित दृष्टान्त है। एक भूत था। उसकी एक मनुष्यने उपासना की तो उस भूतने प्रकट होकर कहा—'कहो, क्या चाहते हो?' उसके बतलानेपर भूतने उसका अभीष्ट कार्य तुरंत सम्पन्न कर दिया और कहा—'मुझे काम बतलाओ; जिस समय काम नहीं बतलाओगे, उस समय मैं तुमको मार डालूँगा।' वह मनुष्य भूतको जो भी काम बतलाता, वह सब तुरंत कर देता। तब उसके भाईने कहा—'कहाँतक काम बताये जायँ? पर काम न बतानेपर मारनेका भय! भाई! एक बाँस मँगवाकर गड़वा दो और इससे कह दो कि जबतक मैं दूसरा काम न बतलाऊँ, तबतक तुम इस बाँसपर चढ़ो और उतरो। बस, यह काम कभी पूरा होगा ही नहीं।' उसने वैसा ही किया।

अपने भी एक भूत लगा हुआ है। यह भूत है मन—यह निकम्मा नहीं रह सकता, इसको भी कोई एक स्थायी काम देना होगा। अपना हृदय ही घर है। भगवान्‌का स्वरूप ही बाँस है। उसमें भगवत्स्वरूपकी धारणा करना ही बाँस गाड़ना है। भगवान्‌के चरणोंसे लेकर मस्तकतक और मस्तकसे लेकर चरणोंतक बार-बार चिन्तन करते रहना ही बाँसपर चढ़ना-उतरना है। मनको यही काम बता देना है कि कभी भगवान्‌के चरणोंको देखो, कभी कमर कटि-प्रदेशको देखो, कभी आभूषणोंको देखो, कभी उनके हाथके शङ्खको देखो, कभी गदाको देखो, कभी मस्तकको देखो—यों हर समय उनको देखते ही रहो। एवं उनके गुण-प्रभाव और चरित्रोंका चिन्तन करते रहो। बस, मन इससे वशमें हो जायगा। काम सिद्ध हो गया।

इसी प्रकार जब कोई सेवाका काम मिल जाय तो उसे खूब तत्परतासे करना चाहिये। कामके लिये उस मनुष्यका आदर्श लेना चाहिये, जो वर्तमान समयमें सबसे तेज काम करनेवाला हो। तत्परता होनेपर एक व्यक्ति तीन-चार व्यक्तियोंका काम कर सकता है। जितनी जिसमें योग्यता होगी, उसीके अनुसार काम होगा; पर उसमें अपनी तत्परता होनी चाहिये। कोई नाम-जपमें तत्पर है, किसीकी ध्यानमें तत्परता है तो जिसकी जितनी तत्परता है, वह उसके लिये उतने ही लाभकी वस्तु है। इसी प्रकार सेवा करनेमें तत्परता होनी चाहिये। चाहे कोई व्यापारका काम हो या धार्मिक काम हो, राग-द्वेषरहित होकर किया जाय तो वह कोई भी काम परम सिद्धिकी प्राप्ति करा देता है। भगवान् कहते हैं—

> यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
> स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥
>
> (गीता १८। ४६)

'जिस परमेश्वरसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वरकी अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा पूजा करके मनुष्य परमसिद्धिको प्राप्त हो जाता है।'

काम कोई भी करो—भजन-ध्यान करो चाहे सेवा करो, उस कामको करो तत्परतासे और राग-द्वेष तथा स्वार्थरहित

होकर। स्वार्थका त्याग न होनेसे ही विलम्ब हो रहा है। प्रत्यक्ष देख लें—जब किसी व्यक्तिको किसी कार्यपर नियुक्त करना होता है तो पहले यही देखा जाता है कि उसकी नीयत कैसी है और कार्य-तत्परता कैसी है। जब वह बताता है और उसकी अच्छी नीयत तथा पूरी कार्यतत्परताका पता लग जाता है तो उस व्यक्तिको सभी कार्यपर रखना चाहते हैं। नीयत अच्छी है और तत्परता है तो संसारमें कोई भी मनुष्य खाली (बेकार) नहीं रह सकता; क्योंकि ऐसे मनुष्यकी सभीको जरूरत है और जिसकी यहाँ जरूरत है, उसकी वहाँ भी जरूरत है।

प्रश्न—महात्माको किस तरह जाना जाय और जाननेपर वह जाननेवाला स्वयं किस प्रकार महात्मा बन जाता है?

उत्तर—कोई मनुष्य किसी विषयका विशिष्ट विद्वान् या कलाकार हो और इसके लिये उसका बड़ा आदर होता हो तो, दूसरोंकी भी इच्छा होती है कि हम भी ऐसे बनें। और यदि कोई चाहे तथा प्रयत्न करे तो वैसा विद्वान् या कलाकार बन सकता है। जब हम देखते हैं कि अमुक मनुष्यमें सत्यता है और इसी कारण उसकी बड़ी भारी प्रतिष्ठा है तो मनमें भाव होता है कि हमें भी सत्यका पालन करना चाहिये। भगवान्‌की महान् सुहृदताकी बात सोचनेपर अपने मनमें आता है कि हमें भी सुहृद् बनना चाहिये। किसीमें त्याग है और उसके त्यागकी प्रशंसा सुनते हैं तो मनपर उसका प्रभाव पड़ता है और वैसा ही त्यागी बननेकी इच्छा होती है। इसी प्रकार महात्मामें जो गुण-प्रभाव हैं, उनको देख-सुनकर मनमें एक तीव्र आकाङ्क्षा होती है कि हम किस प्रकार इस तरहके बनें। सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके अधीश्वर परमात्मा महात्माके पुकारनेसे आ जाते हैं, यह सुनकर हमारे अंदर एक ऐसा सुदृढ़ उत्साह उत्पन्न होगा कि चाहे प्राण भी चले जायँ, हमें इस तरहका अवश्य बनना है। महात्माके गुण-प्रभाव-चरित्रोंके भीतरी रहस्यको जानना ही उनको जानना है और साधक उनको जितना-जितना जानता जायगा, उतना-उतना ही वैसा बननेका उसके मनमें उत्साह होता जायगा। वह उनके गुणोंका पुजारी बन जायगा। फिर, जिस-जिस तरह उसमें महात्माके गुणोंकी वृद्धि होती जायगी, उसी-उसी तरह वह महात्मा बनता जायगा और उसका लोगोंपर प्रभाव भी पड़ता जायगा।

जब हम लोग महात्माका महान् गुण-प्रभाव देखते हैं तो सहज ही महात्मा बननेकी अभिरुचि होती है। यह अभिरुचि ही तीव्र इच्छा उत्पन्न करती है। और जब महात्मा बननेकी तीव्र इच्छा उत्पन्न हो जाती है तो उसे कोई रोक नहीं सकता। फिर, महात्माओंके गुण-प्रभाव और चरित्रोंका तत्त्व-रहस्य मनुष्य जितना समझता जायगा, उतने ही गुण उसमें आते जायँगे।

प्रश्न—महात्माका तत्त्व-रहस्य जानना क्या है?

उत्तर—एक मनुष्य हलुआ बना रहा है। वह किस तरह हलुआ बना रहा है, हम यह देखते रहें और फिर उसी प्रकार हम भी हलुआ बना लें। यदि बना पाये तो हम हलुआ बनानेका रहस्य जान गये। नहीं बना पाये तो हमने उसका मर्म नहीं जाना। किसीने पाक-शास्त्रकी किसी पुस्तकमें पढ़ा कि इस तरह हलुआ बनाया जाता है। पुस्तकमें पढ़कर उसने कहा, 'अब तो मैं भी हलुआ बनाना जान गया हूँ।' अनुभवी रसोइयाने पूछा, 'आप कैसे जानते हैं? आपने कभी बनाया है क्या?' इसने कहा—'बनाया तो नहीं, पर सब सामग्री दो तो मैं बना दूँगा, मैंने पुस्तकमें पढ़ा है।' रसोइयाने सारी सामग्री रख दी। पुस्तकमें पढ़ा था पंद्रह मिनटमें आटा सिकता है। उसने घड़ी मँगवाकर रख ली और उसमें वह मिनट देख-देखकर क्रिया करता रहा। आँच ज्यादा थी, आटा दस मिनटमें ही सिक गया था। पर आटा सिकनेपर क्या स्थिति होती है यह तो वह जानता नहीं था, वह तो यही मानता था कि पंद्रह मिनटमें आटा सिकेगा। समय ज्यादा होनेसे आटा जल गया। पर उधर रसोइयाने बहुत बढ़िया हलुआ बना दिया। उसने रसोइयासे पूछा—'क्या तुमने पाक-कलाकी पुस्तक पढ़ी है?' रसोइयाने कहा—'मैंने पुस्तक-पोथी कुछ नहीं पढ़ी है, मैंने तो बनानेवाले लोगोंसे हलुआ बनानेका रहस्य सीखा था।' इसी प्रकार किसी भी वस्तुका अनुभवयुक्त रहस्य मनुष्य जान जाय तो फिर पुस्तकोंकी आवश्यकता नहीं है।

भगवत्कृपासे अभी तो आध्यात्मिक रहस्योंको बतानेवाले पुरुष उपलब्ध भी हैं, और पुस्तकें भी हैं; किंतु यदि किसी समय इन सबका अभाव हो जाय तो भी मनुष्यमें तत्परता हो तो वह भगवत्कृपासे इनका रहस्य उसके समझमें आ सकता है। बहुत-सी वस्तुएँ ऐसी हैं, जिन्हें देखकर तत्परतासे लगा जाय तो वैसी वस्तुएँ बनायी जा सकती हैं;

क्योंकि तत्परता होनेपर विषयमें गहरा प्रवेश होता है और उसकी विधि जान ली जाती है। परंतु जो अध्यात्म-विद्या पुस्तकोंमें लिखी पड़ी है, उसको तो समझानेवाले भी अभी विद्यमान हैं; तथापि उसे सीखनेकी हमलोग चेष्टा नहीं करते—यह बड़े आश्चर्य तथा खेदकी बात है। हमलोग तत्पर हो जायँ तो महात्मा पुरुषोंके रहस्यको समझ सकते हैं। संसारमें कोई भी काम असम्भव है ही नहीं। जब परमात्माकी प्राप्तितक सम्भव है, तब असम्भव क्या रह जाता है? महात्माओंके गुण-प्रभावका रहस्य जानना यही है कि उसमें वे सब चीजें प्रत्यक्षरूपमें आ जायँ।

किसी आदमीने कहा—'मेरा क्रोधका स्वभाव है।' महात्मा बोले—'दमन करना चाहिये।' उसने उत्तर दिया—'दमन होता नहीं।' महात्माने कहा—'होता क्यों नहीं? तुम करना नहीं चाहते। राज्यके अधिकारी जब तुम्हारे थोड़े-से अपराधपर चार बेंत लगा देते हैं, तब क्या तुमको वहाँ भी क्रोध आता है?' वह बोला—'नहीं।' महात्माने पूछा—'क्यों नहीं?' उसने कहा—'वहाँ भय है।' महात्मा बोले—'बस, यही बात है। तुम्हें भय नहीं, इसीसे तुम क्रोधका दमन करना चाहते नहीं। नहीं तो क्या नहीं होता?'

इसी प्रकार अन्य सभी बातें हैं। महात्मा पुरुषोंके गुण-चरित्र हममें स्वाभाविक ही आ सकते हैं। पहले यह निश्चय होना चाहिये कि महात्माके गुण-चरित्र बहुत ही मूल्यवान् तथा प्राप्त करने योग्य वस्तु हैं। अमुक व्यापारी हजारों रुपये कमा लेता है—यह सुनकर दूसरे व्यापारी उसी चीजका व्यापार करनेकी चेष्टा करते हैं, उसकी नकल करते हैं। वैसे ही हमें भी यह विचार करना चाहिये कि महात्माओंमें क्या विशेषता है। वे नाम-जप करते हैं तो हम भी नाम-जप कर सकते हैं। वे गीताका अध्ययन करते हैं तो हम भी गीताका अध्ययन कर सकते हैं। जब यह समझमें आ जाता है कि यह विशेष मूल्यवान् है, तब उसका ग्रहण हो जाता है। मूल्यवान् नहीं समझते, तभीतक हमने उसका त्याग कर रक्खा है। महात्माओंकी क्रिया—आचरणों और सद्‌गुणोंपर संसारके लोग मुग्ध होते हैं। बाहरी कार्योंका नाम क्रिया है और भीतरके भावोंका नाम सद्‌गुण है। महात्माओंमें सदाचार-सद्‌गुण ही होते हैं। हमलोग देखें कि उनका कितना प्रभाव पड़ता है। उन्हें देखकर लोग ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहते हैं। जब ब्रह्मचर्यका पालन करना मूल्यवान् समझा जायगा, तभी उसके पालन करनेका उत्साहपूर्ण मनोरथ होगा। चोरी करनेवाले चोरका कोई विश्वास नहीं करता। उसके घरवाले भी उसका विश्वास नहीं करते। बाप भी बेटेका विश्वास नहीं करता। किंतु जिसकी ऐसी अच्छी नीयत है कि दूसरेके धनको धूलिके समान समझता है, उसका सारी दुनिया विश्वास करती है। शास्त्र कहते हैं, उसके लिये सारे संसारमें रत्न भरे पड़े हैं। यही बात सभी विषयोंमें है। जो भोगी हैं, उनकी कोई कद्र नहीं है; पर जो त्यागी है, वैराग्यवान् है, बड़े-बड़े लोग उसके चरणोंमें सिर नवाते हैं। यह देखकर मनमें भाव होना चाहिये कि हममें भी ऐसा त्याग और ऐसी विरक्ति हो।

त्याग भी भीतर-बाहर दोनोंका ही होना चाहिये। केवल बाहरी त्याग है भीतरी नहीं तो, वह बगुलेकी तरह है। बगुला ध्यान लगाकर बैठा है, मछली आयी तो पकड़कर खा गया। केवल ऊपरका दिखौआ त्यागी है, भीतरका असली नहीं तो कुछ नहीं। त्यागसे जो शान्ति मिलती है, वह उसमें कहाँ? इसलिये जो असली चीज है, वही असली है; नकली नकली ही है। इस प्रकार समझकर मनमें यह उत्साह होना चाहिये कि हम भी भीतरसे त्यागी बनें। क्षमा, शान्ति, समता आदि भीतरके भाव हैं, उत्तम भाव हैं।

हमलोग देखें कि महात्मामें कितनी उदारता है, कितनी समता है, कितनी शान्ति है। उनमें इन गुणोंको देखनेसे अपने मनमें भी आयेगा कि हम भी ऐसे ही बनें। यह देखें कि इनका दुनियामें कितना प्रभाव है, इनके दर्शन-भाषणसे लोगोंपर क्या असर पड़ता है। जैसे कस्तूरी और कपूरका असर पड़ता है, वैसे ही अच्छे पुरुषोंका प्रभाव पड़ता है। यह जाननेपर हम भी प्रभावशाली बनना चाहेंगे। आरम्भमें यही महापुरुषोंका जानना है। महात्माओंकी शेष सीमाके जाननेमें तो वाणीकी गति नहीं है। वह जानते-जानते अपने-आप महात्मा हो जायगा। वह तो अनुभवकी चीज है। यहाँ केवल किनारेकी ही बात बतायी जा सकती है। किनारेकी बात भी वही पुरुष बता सकता है, जो वहाँतक पहुँच चुका है। पुस्तक पढ़कर भी कोई बता तो सकता है, पर उससे समझमें आना कठिन है।

अब यह बताया जाता है कि परमात्माको प्राप्त हुए पुरुषकी कैसी स्थिति हो जाती है। उसको समझनेसे उपर्युक्त बात भी समझी जा सकेगी। जो मनुष्य ज्ञानमार्गसे

परमात्माको प्राप्त हो जाता है, उसकी कैसी स्थिति होती है ? जो बड़ाई-सम्मान आदि संसारके लोगोंको अच्छे लगते हैं, वे जब अच्छे न लगें तब समझना चाहिये कि हमने महात्माके तत्त्वको कुछ जाना और हम आगे बढ़े हैं। उस समय इन मान-बड़ाईके प्राप्त होनेपर लज्जा आने लगती है, सहन कम होता है और संकोच होने लगता तथा ऐसी इच्छा होती है कि ये मान-बड़ाई न मिलें तो ठीक है। फिर तो वैसे ही दुःख होने लगता है, जैसे गाली और निन्दाके शब्द सुनकर होता है। उसे मान और प्रशंसासे यहाँतक दुःख होने लगता है कि उसकी आँखोंसे दुःखके आँसू बहने लगते हैं। वह परमात्मासे प्रार्थना करता है कि—'हे प्रभो ! ये सब मेरे मार्गके रोड़े हैं, इन विघ्नोंसे तू ही बचा। मैं क्या करूँ ?' उसके बाद वह परमात्माको प्राप्त हो जाता है। उसके शरीरसे सारे सात्त्विक व्यवहार होते हैं। सत्त्वगुणसे ऊँचा तो कोई व्यवहार नहीं है। उसका आत्मा तो परमात्माको प्राप्त हो गया, वह ब्रह्ममय हो गया। यह स्थिति और व्यवहारकी बात है।

अब अन्तःकरणके भावकी बात विशेषरूपसे बतलायी जाती है। उसमें मान, बड़ाई, प्रतिष्ठाकी गन्ध भी नहीं है। कोई पूछ सकते हैं कि उसे मान-बड़ाई क्यों अच्छी नहीं लगती ? इसका उत्तर यह है कि वह समझता है कि मान-बड़ाईकी इच्छामें मूर्खताके सिवा कोई भी हेतु नहीं है। उसकी तो सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें स्थिति है। संसारमें मान-बड़ाई-पूजा-कीर्ति होती है—नाम और शरीरकी; वह नाम और शरीर है नहीं। यह शरीर तो मिथ्या है। कोई चाहे इस शरीरकी पूजा करे या दीवालकी, उसमें क्या भेद है ? उसकी दृष्टिमें तो कोई भेद ही नहीं है। यदि भेद है तो वह ज्ञानी कहाँ ? देह महात्मा है या इन्द्रियाँ ? क्या मन, बुद्धि महात्मा हैं ? इस देहमें जो अभिमान है, उस अभिमानका नाश होनेसे जब उसका आत्मा परमात्माको प्राप्त हो जाता है, तब उसे महात्मा कहते हैं। जो शरीर या मन-बुद्धिको महात्मा मानता है, वह तो उस अल्पको ही महात्मा मानता है।

कहते हैं, उस महात्माकी संसारमें कीर्ति हो, नाम हो, उसका स्मारक हो। किंतु साधन-अवस्थामें तो साधकको ऐसा प्रतीत होना चाहिये कि स्मारक बना दिया तो मानो उसकी छातीपर पत्थर ही चुन दिया। वह तो मान-बड़ाईको कलङ्क समझता है। यदि जीते हुए भी मान-बड़ाई और स्मारककी इच्छा है तो वह ज्ञानी कहाँ रहा ? वह तो अज्ञानी है। नहीं तो, आत्माकी नित्य एकता होनेसे दुनियामें जितने अवतार हुए हैं और वर्तमानमें जितने भी महात्मा या नेताके नामसे उपस्थित हैं, उनकी प्रशंसा, मान-बड़ाई उसकी ही तो है। यदि उसका यह आग्रह है कि 'मेरे इस शरीरकी मान-बड़ाई, प्रतिष्ठा होनी चाहिये' तो यह उसका अज्ञान है; वह ज्ञानी नहीं है। यह पक्की परीक्षा है। किसीपर भी यह घटा लें।

यदि मैं चाहूँ कि संसारमें मेरा खूब नाम हो, मुझे सब कोई पूजें, मरनेके बाद मेरा फोटो उतारा जाय, मेरा स्मारक बनाया जाय और मेरी मूर्तिकी स्थापना हो तब मैं अज्ञानी ही हुआ, ज्ञानी कहाँ ? एक मनुष्य कहीं कोई मकान आदि बनवाता है और उसपर अपने नामका पत्थर लगवा देता है, उस मनुष्यमें और ऐसे महात्मामें क्या अन्तर है। फिर तो उस पत्थर लगवानेवालेको भी महात्मा ही कहना चाहिये। किंतु वह महात्मा नहीं, वह तो महातमा है। वह एक व्यक्ति है, जो अपने व्यक्तित्वको पुजवाना चाहता है, नाम-रूपको पुजवाना चाहता है; अतः उसकी देहमें सत्ता सिद्ध हो गयी। फिर वह महात्मा कैसे ? महात्माके इस लक्ष्यको जो पुरुष समझ जाता है, उसपर उसका ऐसा प्रभाव पड़ता है कि वह उसी समय महात्मा बन जाता है। यदि नहीं बना है तो उसने इस मर्मको समझा ही नहीं है। कानोंसे सुन तो लिया, पर वह तत्त्व अभी उसे धारण नहीं हुआ है।

अब भक्तिमार्गसे चलनेवाले पुरुषकी उच्चकोटिकी स्थितिके सम्बन्धमें बतलाया जाता है। उसमें इतना भेद रह सकता है कि उसका सारे संसारके साथ करुणा, उदारता और प्रेमका व्यवहार होगा और जो ज्ञानमार्गसे परमात्माको प्राप्त हुआ है, वह एकान्तस्थानमें रहना चाहेगा, किसी मनुष्यसे संसर्ग रखना नहीं चाहेगा। पर जो आन्तरिक गुण समता है, वह तो दोनोंमें ही एक-सी है। मान-बड़ाईकी इच्छा दोनोंमें ही नहीं है। ज्ञानीमें तो यह भाव रहता है कि संसारमें जिस-किसीकी भी प्रशंसा हो रही है, वह आत्मा-की ही तो है, मेरी ही तो है। पर भक्तकी इससे भिन्न बात है। भक्तकी कोई मान-बड़ाई, प्रशंसा करता है तो आरम्भ-कालमें तो वह प्रभुके सामने रोता है कि 'हे प्रभो ! लोग मुझे डुबा रहे हैं, आप ही इससे मेरी रक्षा करें। मैं बड़ाईके योग्य नहीं, मैं तो घृणाके योग्य हूँ। प्रभो ! आप मेरी रक्षा क्यों नहीं करते ?' आगे जाकर उसे अपनी मान-बड़ाई-प्रशंसासे दुःख होने लगता है। फिर जब वह भगवान्‌को

प्राप्त हो जाता है, तब जो लोग उसके नाम-रूपकी प्रशंसा या उसका मान करते हैं, उनको वह समझाता है कि 'आप-लोग प्रभुके नाम-रूपकी प्रशंसा करें, जिससे आपकी उन्नति हो, आपका उद्धार हो।' वह अपने नाम-रूपको हटाकर प्रभुके नाम-रूपमें श्रद्धा करवाता है और कहता है—'मैं तो तुच्छ मनुष्य हूँ।' इस प्रकार कहकर उनकी बुद्धिको पलट देता है, जिससे उनको विशेष लाभ हो। उसके नाम-रूपका संसारमें प्रचार हो रहा है, यह देखकर साधनावस्थामें तो वह रोने लगता है कि 'लोग यह अनर्थ कर रहे हैं। वह तो महान् नीच, दुष्ट है।' वह हृदयसे चाहता है कि ऐसा नहीं होना चाहिये। तथा भगवान्की प्राप्ति होनेके बाद वह इस बातको हटानेके लिये जीतोड़ प्रयत्न करता है। लोगोंकी प्रवृत्ति भगवान्के नाम-रूपकी ओर हो, वही उसकी चेष्टा होगी। जिस प्रकार अपने बालकोंको समझाया जाता है, वैसे ही समझाता है कि संसारमें अपने नाम-रूपकी भक्ति करानेवाले मनुष्य बालकोंके समान अज्ञ हैं। वे साक्षात् परमात्माको छोड़कर यह सर्वथा अनुचित काम कर रहे हैं। स्वामीकी पूजा छोड़कर मेरी पूजा करे—यह कोई भक्त नहीं चाहेगा। यदि चाहता है तो वह महान् मूर्ख है, ठग है। भक्त तो है ही नहीं।

ज्ञानीके विषयमें बताया गया कि वह परमात्माके साथ एकीभावसे मिल जाता है। पर भक्तका मिलना ऐसा होता है कि वे दो होकर एक रहते हैं। यहाँ वेदान्तकी-ज्यों एकता नहीं है, बल्कि उससे भिन्न प्रकारकी एकता है। यह एकता-की स्थिति यदि समझमें आ जाय तो समझनेवाला मनुष्य भी वैसा ही बन जाय। उसका रहस्य समझना चाहिये। उपर्युक्त बातें सुनकर और देखकर जब धारण हो जाती हैं, तब समझना चाहिये कि महात्माके गुण-आचरणोंका उसपर प्रभाव पड़ा है। धारण हो जाना ही असली समझना है। धारणकी कमी है, वही रहस्य समझनेकी कमी है। यह रहस्य समझनेकी कमी ही हम सब लोगोंमें है। जितनी अधिक श्रद्धा होती है, उतना ही रहस्य समझमें आता है। श्रद्धा होती है गुण-प्रभाव-चरित्रको लेकर। आगे जाकर जो श्रद्धा होती है, वह वस्तुके तत्त्वको लेकर होती है। वही असली श्रद्धा है। फिर वह धारण हो ही जाती है। जिस प्रकार, जो मनुष्य हलुआ बनानेका तत्त्व समझ गया है, वह हलुआ बना लेता है। यदि नहीं बना लेता तो उसने तत्त्व समझा नहीं है और जबतक नहीं समझा है, तबतक बार-बार सीखता रहे। इसी प्रकार इस विषयमें भी समझ लेना चाहिये। जितना धारण हो गया, उतना ही वह मर्मको समझ गया। महात्माओं और भक्तोंको जानना यही है कि उनके गुण, चरित्र, प्रभावको भलीभाँति जान लेना तथा उसके बाद, उनके गुणोंको धारण करना और उनके आचरणोंका अनुकरण करना। यही उनकी असली उपासना है। उनकी पूजा करना असली उपासना नहीं है।

कठपुतलीकी तरह उनकी इच्छाके अनुसार नाचे, उनकी इच्छाके अनुसार ही चले। इच्छा समझमें न आये तो संकेतके अनुसार चले। जो इस प्रकार करता है, वह उनका उपासक है। जो नीचे दर्जेका उपासक होता है, वह उनकी इच्छाको नहीं समझता। महात्माने पूछा—'तुमने यह काम नहीं किया?' वह बोला—'आपने कहा कहाँ?' महात्माने कहा—'मेरा उद्देश्य तो तुम जानते हो न।' वह बोला—'हाँ, पर स्वभावका दोष है।' महात्माने कहा—'मैंने उस कामको करनेका संकेत किया था, फिर क्यों नहीं किया?' वह बोला—'ठीक है, पर मेरे मनका दोष है।' इस तरह काम करनेवाला उपासक नहीं है, न उसमें श्रद्धा है; वह तो अपने मनका उपासक है। जो आज्ञाके अनुसार भी नहीं करता, उसकी कद्र तो आठ रुपये मासिकके नौकरके समान भी नहीं है। उसे चाहे तब निकाल दिया जाता है। कोरा उत्तर देनेवाले नौकरको तो चाणक्यनीतिमें शत्रु बताया गया है। भयसे आज्ञाका पालन तो पैसा लेनेवाले नौकर भी करते हैं। अतः भयसे आज्ञापालन करनेवालेकी संज्ञा भृत्यके समान है। जो प्रसन्नतासे काम करता है, वह अच्छे सेवकके समान है। और जो संकेतके अनुसार करता है, वह श्रद्धालु अच्छे-से-अच्छे सेवकके समान है; वह स्वामीके द्वारा सेवककी भाँति प्रशंसाका पात्र होता है। फिर यदि उनकी इच्छाके अनुसार करे तब तो बात ही क्या है। इस प्रकार महात्मा पुरुषकी आज्ञाका पालन करना उनकी उपासना है। जिस प्रकारका व्यवहार महात्मा करते हैं, वैसा ही उसे करना चाहिये। यदि कहीं उनका व्यवहार तो दूसरे प्रकारका हो और आज्ञा दूसरे प्रकारकी हो तो उस स्थलमें उनकी आज्ञाके अनुसार करना चाहिये। वहाँ उनकी वाणी बलवान् है, उनकी आज्ञाके सामने उनका आचरण बलवान् नहीं है। अतः उनसे पूछ ले कि आप आज्ञा तो यह करते हैं और आचरण यह करते हैं। तब वे कह देंगे कि तुम आचरणके अनुसार नहीं, आज्ञाके अनुसार करो; क्योंकि

तैत्तिरीय उपनिषद्में यह बात आयी है । वहाँ आचार्यने शिष्यसे कहा है—'मेरी आज्ञा और मेरे शुभ आचरणोंके अनुसार करो, अन्य आचरणोंके अनुसार नहीं ।'

इसलिये दया, क्षमा आदि अच्छे-अच्छे भावोंको अपने हृदयमें धारण करना चाहिये—यही उत्तम गुणोंकी उपासना है । फिर इनका प्रभाव इनके फलरूपमें स्वतः ही आ जाता है, जैसे कि जल सींचनेसे बीजमेंसे अङ्कुर स्वतः ही पैदा हो जाता है । फिर उसका विकास होते-होते वह भी महात्मा बन जाता है । महात्माओंकी आज्ञाका पालन करना, उनका अनुकरण करना और उनके भावोंको धारण करना—यह महात्मा बननेका मार्ग है । इसलिये सदा महात्माओंका आदर्श अपने सामने रक्खे ।

यदि आप पूछें कि हम किसको लक्ष्य बनाकर चलें, जिससे कहीं भी चूकें नहीं, तो लक्ष्य बनानेके योग्य मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम हैं । उनके जितने भी चरित्र हैं, सभी आदर्श हैं । उनके चरित्र अपने सामने रहने चाहिये । उनके श्रीविग्रह और उनकी प्रत्येक लीलाका स्मरण करे एवं कोई भी व्यवहार करे, तब उससे मिलाता जाय । अपने भाईके साथ व्यवहार करते समय भगवान् रामको याद करें कि वे किस तरह अपने भाइयोंके साथ व्यवहार करते थे । मित्रोंके साथ व्यवहारका काम पड़े, तब स्मरण करें कि भगवान् राम अपने मित्रोंके साथ कैसा व्यवहार करते थे । इसी प्रकार माता-पिताके साथ व्यवहारका काम पड़े, तब याद करें कि भगवान् श्रीराम अपने माता-पिताके साथ कैसा व्यवहार करते थे । हर समय भगवान् रामको लक्ष्यमें रक्खें तथा उनकी वह लीला किस प्रकारकी है, उसे मनके सामने रक्खें । कहीं कमी न आने पाये । इससे भगवान्के रूपकी और उनके आचरणोंकी स्मृति बनी रहती है तथा वह भगवान्की आज्ञाका पालन करता रहता है । वही भगवान्का सेवक है—

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई । मम अनुसासन मानै जोई ॥

इस प्रकार भगवान् रामको लक्ष्यमें रखकर चलें तो थोड़े ही दिनोंमें ही साधनकी सम्पन्नता हो सकती है । नहीं होती तो समझना चाहिये कि हम भगवान् श्रीरामको सामने नहीं रखते, रखना चाहते ही नहीं । यदि यह विश्वास हो जाय कि इसकी कमीसे हमें घोर आपत्ति सहनी पड़ेगी तो फिर देखिये, कितनी तत्परता होती है । लोग रुपया कमानेके लिये व्यापार करते हैं; यदि उनके उस काममें घाटा लगता है तो वे उसके समीप भी नहीं जाते । लोभी मनुष्यके यही भजन होता है कि रुपये कैसे मिलें । उसके हृदयसे यही भजन हो रहा है । इसी प्रकार साधकके भजन होता है भगवान्को पानेका । उसकी सारी क्रियाएँ होती हैं—भगवान्को पानेके लिये ही । ये सब साधन हैं महात्मा बननेके । श्रीरामसे बढ़कर कोई नहीं है; किंतु श्रीरामके साथ भी विनोद करें कि हमलोगोंको इनसे भी बढ़कर बनना है । इससे श्रीराम नाराज नहीं होते, बल्कि प्रसन्न होते हैं कि 'यह मेरा सच्चा भक्त है, मेरे आचरणोंको कितना आदर देता है ।'

महात्माके पैर दबाना ही असली सेवा नहीं है । जिसका इस प्रकारकी सेवा करानेके उद्देश्यसे ही शिष्यसे नाता है, वह तो 'महान् तमा' है, 'महान् आत्मा' नहीं । जो समझता है कि मेरे पैर दबानेसे पैर दबानेवालोंका उद्धार हो जायगा, वह तो महान् ठग है, घोर स्वार्थी है । जो सच्चे महात्मा होते हैं, वे तो कहते हैं—'सच बोलो, धर्मका आचरण करो ।' उनके कथनके अनुसार करनेसे साधकका कल्याण होता है । कोई भी महात्मा यह थोड़े ही कहता है कि 'मेरे पैर दबाओ, चरण छूओ ।' लोग ही ऐसा करते हैं । किस लिये ? ऋणसे मुक्त होनेके लिये । पर महात्मा होकर यह थोड़े ही कराता है । बीमार होनेपर जब आवश्यकता पड़ती है तब भी वे विरोधके ही पक्षमें रहते हैं । कोई विरक्त महात्मा हैं, उनको कपड़ेकी आवश्यकता है; पर वे स्वीकार नहीं करते, इसीमें उनकी शोभा है । यदि स्वीकार कर लेते हैं तो उनकी दया है । तेल लगवाना, हवा करवाना आदि यह अपने शरीरकी पूजा करवानी है और अपना उच्छिष्ट देना उच्छिष्टका प्रचार करना है । महात्मा यह क्यों करवाने लगे ? यदि इसमें किसीको सुख मिलता तो गड़बड़ है । उसके कल्याणके लिये करवाता है तो उससे भी ज्यादा गड़बड़ है । यदि प्रणाली—परम्परा-रक्षाके लिये करवाता है तो उसे दूसरे महात्माओंकी पूजा आदि करवानी चाहिये; अपनी तो कोई करे तो विरोध ही करना चाहिये । करवाये नहीं, विरोध चाहे कम भी करे । करवा तो वह सकता ही नहीं, उसे जरूरत क्या है ?

महान् पुरुषोंमें यही भाव होने चाहिये। साधकके लिये असली बात है महात्माके गुणों और आचरणोंको ग्रहण करना। ऐसा करनेसे वह शीघ्र ही महात्मा बन सकता है। टकसालमें रुपयेका सिक्का बननेमें जितना विलम्ब होता है, उतना ही महात्मा बननेमें विलम्ब है। चाँदी होनी चाहिये। वह भी यन्त्र (मशीन) है और यह भी यन्त्र (मशीन) है। सिक्का कैसा बनता है? जैसा साँचा होता है। यहाँ साँचा क्या है, वही महात्मा। महात्माके हृदयमें जो छाप है, वही छाप बननेवालेके हृदयमें पड़ती जाती है। जिस प्रकार चाँदी हो, साँचा निर्दोष हो और मशीन आदि सब ठीक हों तो सिक्का तुरंत बन जाता है, इसी प्रकार सामने साधक पुरुष अधिकारी हो, महात्मा बननेकी तीव्र इच्छा हो और सच्चे महात्मा हों तो उनके सङ्गसे तुरंत महात्मा बन जाता है।

प्रश्न—गृहस्थके घरमें साधु भोजन करे, तब वह किस प्रणालीसे करे?

उत्तर—प्रणालीकी बात तो शास्त्रोंमें लिखी है। संन्यासी उस समय भिक्षा माँगने गृहस्थके घर जाय, जब घरमें धूआँ बंद हो गया हो, जिससे कि गृहस्थ उसके लिये और भोजन न बनाये। यदि किसी गृहस्थके घरपर दूसरे साधु खड़े हों तो वहाँ न जाय। दूसरी बात यह है कि शरीरके लिये वह भिक्षा करने क्यों जा रहा है। इसलिये कि शरीरका निर्वाह अन्नके बिना नहीं हो सकता। मनमें यह भाव रखना चाहिये कि 'मैं इसलिये भिक्षा लेने नहीं जाता कि इससे भिक्षा देनेवालेका कल्याण होगा, बल्कि भिक्षा देनेवाला तो मेरा उपकार कर रहा है। अतः उसका किसी प्रकार भी अपनेद्वारा हित हो, ऐसी चेष्टा करनी है। वह भिक्षा दे रहा है, यह तो मेरे ऊपर ऋण ही है। किसी प्रकार भी उसका प्रत्युपकार हो जाय तो उससे मैं उऋण हो जाऊँ।' प्रत्युपकार क्या है? जिससे उसका हित हो। वह ईश्वरभक्ति, कर्मयोग, ज्ञानयोग, ध्यानयोग आदिमेंसे, जिसके योग्य हो, उसीका उसे उपदेश करे। यह उसका कर्तव्य होता है। भाव अच्छा होना चाहिये। उपकार करनेकी इच्छा होनी चाहिये। तब वह भिक्षाके दोषसे दोषी नहीं होता, बल्कि उसके दोषसे मुक्त रहता है। भिक्षा लेनेवाले साधुओंके लिये शास्त्रोंमें ऐसा बतलाया गया है। पर महात्मा लोगोंके लिये इसका क्या क्रम बताया जाय, उनके लिये तो कोई कर्तव्य ही नहीं है। उनके द्वारा तो जो अपने-आप हो रहे हैं, वे उनके आचरण ही सारे संसारके लिये वेदस्वरूप हैं। वे साक्षात् वेदकी मूर्ति हैं—वे जीती-जागती श्रुति और स्मृति हैं। वेद ही उनके रूपमें मूर्तिमान् होकर समझा रहे हैं कि हमलोगोंको क्या करना चाहिये।

अतएव हमलोगोंको महात्माओंकी आज्ञाके अनुसार चलना चाहिये और उनके आचरणोंके अनुकूल अपने आचरणोंको बनाना चाहिये। यही उनकी असली सेवा है। यही बात भगवान्‌ने गीतामें कही है—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥
(४।३४)

'उस ज्ञानको तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियोंके पास जाकर समझ; उनको भलीभाँति दण्डवत्-प्रणाम करनेसे, उनकी सेवा करनेसे और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करनेसे वे परमात्मतत्त्वको भलीभाँति जाननेवाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञानका उपदेश करेंगे।'

उनकी आज्ञाका पालन करना सेवा है, उनके भावोंको धारण करना सेवा है और उनके आचरणोंके अनुकूल अपने आचरण बनाना—यह भी सेवा है। इसीलिये कहा गया है—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥
(गीता ३।२१)

'श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं। वह जो कुछ प्रमाण कर देता है, समस्त मनुष्यसमुदाय उसीके अनुसार बरतने लग जाता है।'

वैदिक उपासना

(लेखक—श्रीमनोहरजी विद्यालंकार)

'उपासना' शब्दका प्रयोग बोल-चालमें बहुत सुना जाता है। धार्मिक क्षेत्रमें इसका प्रयोग परमात्माका ध्यान, स्तुति या किसी प्रार्थनाके रूपमें किया जाता है। बल्कि यह शब्द इसी अर्थमें प्रायः रूढ़ हो गया है। अन्यथा पति-पत्नी, पिता-पुत्र, गुरु-शिष्य, स्वामी-सेवक और मित्र-मित्र भी परस्पर उपासना करते हैं।

वेदकी चारों संहिताओंमें 'उपासना' शब्दका एक बार भी प्रयोग नहीं हुआ है। क्रियारूपमें इसका प्रयोग कुल छः बार हुआ है—तीन बार ऋग्वेदमें और तीन बार यजुर्वेदमें।

ऋग्वेदमें—

(१) ये चार्वन्तो मांसभिक्षामुपासते।

(ऋ० १ । १६२ । १२)

(२) विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।

(ऋ० १० । १२१ । २)

(३) देवा भागं यथापूर्वं संजानाना उपासते।

(ऋ० १० । १९१ । २)

यहाँ सायणने क्रमशः काङ्क्षन्ते, प्रार्थयन्ते, सेवन्ते वा तथा स्वीकुर्वन्ति अर्थ किया है।

इनमेंसे प्रथम तथा द्वितीय मन्त्र यजुर्वेदमें भी आये हैं। वहाँ प्रतीक है यजुः २५ । ३५ तथा यजुः २५ । १३।

इसके अतिरिक्त निम्न प्रयोग और हैं—

१. यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।

(यजुः ३२ । १४)

२. अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।

(यजुः ४० । ९)

३. अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।

(यजुः ४० । १२)

इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वेदके प्रचलन-कालमें 'उपासना' शब्द प्रचलित नहीं था। इस शब्दका चलन बहुत बादमें हुआ है। कब हुआ ? यह खोजका विषय है।

वेदमें 'अर्च' और 'स्तुति' शब्दोंका संज्ञा तथा क्रिया दोनों प्रकारसे सैकड़ों बार प्रयोग हुआ है—किंतु उस अर्थमें नहीं, जिस अर्थमें 'उपासना' शब्द आजकल प्रयुक्त होता है, अथवा रूढ़ है।

'उपासना' शब्दका धात्वर्थ है किसीके समीप होना—न कुछ माँगना, न कुछ गुणगान करना, न कुछ कामना करना। दूसरे शब्दोंमें इसे 'निष्काम सख्य' अथवा 'पूर्ण आत्मसमर्पण' कहा जा सकता है।

यह उपास्यकी इच्छापर है कि वह उपासकको कुछ दे या न दे, हमारा स्वागत, भरण-पोषण करे या न करे, हमें किसी योग्य समझकर अपना कुछ काम कराये या न कराये।

लोकमें भी यदि हम किसी मित्रके पास जाकर बैठ जायँ और कोई काम न बतायें तो वह अपने भोजनके समय हमें भोजन कराता ही है और यदि हमारा यह नित्य-नियम हो जाय—और मित्रको हमारी योग्यता और ईमानदारीमें विश्वास हो तो वह अपने बहुत-से विश्वस्त और महत्त्वपूर्ण कार्य, जिनमें उसका जाना उचित है किंतु जा नहीं सकता, हमपर छोड़ देगा, हमें अपने प्रतिनिधिरूपमें भेज देगा। ऐसे व्यक्ति एक तरहके महापुरुष होते हैं, जिन्हें युग-पुरुष कहा जाता है। वे लोग प्रभुके सच्चे उपासक होते हैं। प्रभु उन्हें अपने प्रतिनिधिके रूपमें जगत्‌में भेजता रहता है।

वेद स्तुतिको कामदुघा-रूपमें चित्रित करता है।

१. यशसं कारुं कृणुहि स्तवानः।

(ऋक्० १ । ३१ । ८)

स्तुति किये जाते हुए आप स्तोताको यशस्वी बनाइये।

२. अतः पाहि स्तवमान स्तुवन्तमग्ने, माकिर्नो दुरिताय धायीः।

(ऋक्० १ । १४७ । ५)

'स्तुति किये जाते हुए अग्निदेव! स्तोताकी रक्षा कीजिये; हममेंसे कोई भी दुःख, दुर्गुण, दुर्व्यसनोंमें न फँसे।'

३. न ते स्तोता मतीवान दुर्हितः स्यादग्नेन पापया।

(ऋक्० ८ । १९ । २६)

आपके स्तोताकी कभी भी बुद्धि न मारी जाय और उसका अकल्याण न हो, न कभी वह पाप-मार्गसे चले।

४. मयो रास्व स्तोत्रे महां असि ।

(ऋक्० ८ । ५० । १६)

'स्तोताको सुख दीजिये; क्योंकि आप महान् सुखके भंडार हैं ।'

५. सेमं नः काममापृण । स्तवाम त्वास्वाध्यः ।

(ऋक्० १ । १६ । ९)

'वह हमारी कामना पूर्ण करे । हम आपकी स्तुति उत्तम कर्म करते हुए बुद्धिपूर्वक करते हैं ।'

६. उत स्तोतारं मघवा वसौ धात् ।

(ऋक्० ४ । १७ । १३)

'ऐश्वर्यशाली स्तोताको धनोंके मध्यमें स्थापित करता है ।'

त्वो स्तोपाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रजरं दधानाः ।

(ऋक्० १ । ५३ । ११)

'हम आपकी स्तुति करते हैं और आपकी कृपासे वीर बनकर दीर्घायुको धारण करते हैं ।'

वेदमें बार-बार यह कहा गया है कि स्तोताको धन मिलता है, स्तोताकी आयु दीर्घ होती है, स्तोताको यश और सुख मिलता है । स्तोताकी रक्षा होती है । स्तोताकी कामनाएँ पूर्ण होती हैं । तब मनमें यह बात आती है कि यदि वेदवाक्य गलत नहीं हो सकता तो हमें कोई भी दूसरा काम न करके परमेश्वरकी स्तुति ही करनी चाहिये; क्योंकि परमेश्वरकी स्तुति हमारी सब कामनाओंको पूरा कर देगी । दूसरी ओर हम यह देखते हैं कि परमेश्वरके बहुत-से भक्त, बड़ी देर-देरतक और जोर-जोरसे स्तुति करनेवाले भी पापी, दुखी, दुर्व्यसनी, अल्पायुमें मरनेवाले दिखायी देते हैं ।

तब मनमें संदेह होता है, तर्क-वितर्क उठते हैं कि यह क्या है ? वेदकी बात ठीक नहीं है अथवा ये भक्त लोग सच्चे भक्त नहीं हैं अथवा इनकी भक्ति और स्तुतिमें कोई कमी है ?

इस परस्पर-विरोधी प्रतीयमान स्थितियोंका समाधान करनेके लिये, मनको शान्त करनेके लिये, वेदकी अपौरुषेयता अथवा त्रिकाल-सत्यताको हृदयंगम करनेके लिये आवश्यक है कि हम कोई ऐसा सूत्र ढूँढ़ें, जिससे ये सब बातें युक्ति-संगत हो जायें ।

सूत्र

१. नवन्तमर्हिं संपिणक् ऋजीषिन् ।

(ऋक्० ६ । १७ । ११)

'हे ऋजुमार्गपर चलनेवाले भगवन् ! आप अपने सर्पतुल्य कुटिल स्तोताको नष्ट कर दीजिये ।'

जो सर्पवत् कुटिल है—कहता कुछ है, मनमें कुछ रखता है, स्तुति कुछ करता है, व्यवहार कुछ करता है, अपने आपमें है कुछ और, और अपनेको दिखाता है कुछ और—स्तुति तो करता है किंतु उसके अनुकूल गति नहीं करता, प्रयत्न नहीं करता, उसे आप नष्ट कर दीजिये ।

२. यशसं कारुं कृणुहि ।

(ऋ० १ । ३१ । ८)

'अपने स्तोताको यशस्वी बनाइये ।'

किंतु परमात्मा उसी स्तोताको यशस्वी बनाता है, जो अपनी स्तुतिके अनुकूल कार्य करता है, कामना पूर्ण करनेके प्रयत्न करता है । जो केवल बोलता है, करता कुछ नहीं, उसकी कामना यशस्विनी नहीं होती—उसे सफलता नहीं मिलती ।

३. स्तवाम त्वा स्वाध्यायः ।

(ऋ० १ । १६ । ९)

'हम आपकी बुद्धिपूर्वक बुद्धिके अनुकूल कर्म करनेवाले बनकर, उत्तम कर्म करते हुए ही स्तुति करते हैं ।'

यदि हम अपनी कामनाके अनुकूल प्रयत्न नहीं करेंगे—यदि हम अपनी कामना बुद्धिके विपरीत, तर्कद्वारा असंगतरूपमें करेंगे—अर्थात् हमारे कर्म ज्ञानके अनुकूल नहीं होंगे तब हमारी स्तुति सफल नहीं होगी ।

४. श्रोता हवं नाधमानस्य कारोः ।

(ऋ० १ । १७८ । ३)

'परमात्मा सर्वज्ञ प्रभु याचना-कामनाके अनुकूल कार्य करनेके स्वभाववाले स्तोताकी पुकारको सुनता है ।'

५. मावो मृगो न यवसे जरिता भूदजोष्यः । पथायमस्य गाहुप ।

(ऋ० १ । ३८ । ५)

'केवल स्तुतिसे कुछ नहीं होता, अपनी कामनाको पूर्ण करनेके लिये जिस प्रकार संयम अभीष्ट है, उस संयमको अपनाये बिना स्तुति सफल नहीं हो सकती । अतएव स्तुतिकी सफलताके लिये संयम आवश्यक है । सत्यवक्ताके लिये

आवश्यक है कि वह 'सत्यस्य सूनुः' रूपमें स्तुति करे और असत्यपर संयम करे।

६. गायद् गाथं सुत सोमो दुवस्यन्।

(ऋ० १ । १६७ । ६)

'सच्ची स्तुतिके लिये आवश्यक है कि स्तोता वीर्यकी रक्षा करनेवाला—ऊर्ध्वरेता अथवा केवल उत्पादनमें वीर्यको लगानेवाला हो।' वह व्यक्ति ही सच्ची गाथा—स्तुति गा सकता है।

७. स्तोत्रं मे विश्व मायाहि शचीभिः।

(अ० ५ । ११ । ९)

'मेरे सब स्तोत्रोंमें उपस्थित होइये; क्योंकि मैं उनके अनुकूल कर्मोंके द्वारा आपकी स्तुति करता हूँ।' यही बात गीतामें—

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।

—शब्दोंद्वारा कही गयी है।

रूपक

इस प्रसङ्गमें एक रूपक देखिये।

एक रोगी है। वह डाक्टरको अपनी सारी बीमारी बताता है। बीमारीको देखकर डाक्टर नुस्खा लिखता है। नुस्खेके अनुसार दवाके प्रयोगसे वह ठीक हो जाता है।

यदि बीमार डाक्टरके बदले किसी मजदूर या गँवार अथवा नीम हकीमको बुला ले तो क्या उसके इलाजसे वह कभी ठीक हो सकता है? और क्या दवा मिलावटी या नकली आ जाय तो बीमार ठीक हो सकता है?

अथवा बीमार अपनी वास्तविक बीमारी न बताकर इधर-उधरकी गप्प मार दे तो क्या उसका ठीक इलाज हो सकता है? जिस प्रकार बीमारीमें योग्य डाक्टर, असली एवं बढ़िया दवा और बीमारमें स्वस्थ होनेकी सही इच्छाका होना आवश्यक है, उसी प्रकार स्तुतिद्वारा कामनापूर्तिके लिये भी निम्न बातें आवश्यक हैं—

१. हम किसकी स्तुति करते हैं? जिसकी स्तुति की जाती है, वह उसे देने या पूर्ण करनेकी सामर्थ्य भी रखता है या नहीं? उसके पास वह वस्तु है भी या नहीं? इसलिये हमारा नमस्य—स्तुत्य—इष्ट कौन है, इसका भी अत्यन्त महत्त्व है। वेदके प्रमाणसे यह देखना होगा कि किसकी स्तुति की जानी चाहिये।

२. हमारी स्तुति वास्तविक और उचित दिशामें है या नहीं? यदि दवा नकली हुई अथवा निमोनियाकी बीमारीमें टाइफायडकी हुई तो लाभ नहीं होगा।

३. स्तोता कैसा है? वह सच्चा और यथार्थ है या दिखावटी है?

क्योंकि सच्चा स्तुत्य तो सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् एवं सर्वव्यापक है। यदि किसीकी कामना पूर्ण नहीं होती तो समझ लेना चाहिये कि स्तोतामें या स्तुतिमें कोई कमी रह गयी है।

वैदिक स्तुत्य

वेदके अनुसार हमें अपनी कामनाएँ पूर्ण करनेके लिये किस प्रकारके पुरुषकी स्तुति करनी चाहिये?

(क) स्तुहि देवं सवितारम्।

(अ० ६ । १ । १)

स्तुष्व वर्ष्मन् पुरुवर्त्मानम्।

(अ० ५ । २ । ७)

तमु ष्टुहि यो अन्तः सिन्धौ सूनुः सत्यस्य युवानमद्रोघवाचं सुशेवम्।

(अ० ६ । १ । २)

'ऐसेकी स्तुति करो, जो किसी-न-किसी प्रकारका उत्पादन—निर्माण करनेवाला है, जिसके पास देनेके—कामना पूरी करनेके हजारों रास्ते हैं, जो अपने हृदयमें बैठा है, सत्यमय है, जिसकी वाणी कभी गलत नहीं होती।'

(ख) सहोऽसि सहो मयि धेहि। ओजोस्योजो मे देहि। बलमसि बलं मे दाः स्वाहा। आयुरस्यायुर्मे दाः स्वाहा।

(अ० २ । २७ । ३)

जिसके पास जो वस्तु हो, उससे वह माँगनी चाहिये। यह नहीं कि लुहारसे सोना, स्वर्णकारसे अनाज और किसानसे दवा माँगने लगो।

उपर्युक्त मन्त्र यह संकेत करता है कि हमें परमेश्वरको प्रार्थना करते हुए उसी नामसे याद करना चाहिये, जिस वस्तुकी हम कामना करते हैं।

(ग) मा चिदन्य द्विशंसत। इन्द्रमित्स्तोता वृषणम्।

(अ० ८ । १ । १)

एक एव नमस्यः सुशेवाः। एक एवन स्यो विक्ष्वीऽयः।

(अ० २ । २ । २)

त्वं हि स्तोमवर्धन इन्द्रास्युक्थ वर्धनः । स्तोतॄणामुत भद्रकृत ।

(ऋ० ८ । १४ । ११)

स्तुहि श्रुतं विपश्चितम् ।

(ऋ० ८ । १३ । १०)

तमु ष्टुहीन्द्रम् ।

(ऋ० १ । १७३ । ५)

प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः । नरं नृषाहं मंहिष्ठम् ।

(ऋ० ८ । १६ । १)

नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायानस्ति वृत्रहन् । न किरेव यथा त्वम् ।

(ऋ० ४ । ३० । १)

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुः।··· एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।

(ऋ० १ । १६४ । ४६)

वह इन्द्र एक ही है। उसीको विद्वान् लोग मित्र, वरुण आदि नाना नामोंसे पुकारते हैं। वही एकमात्र स्तुत्य तथा नमस्य है। वही स्तुतियोंके द्वारा स्तोताके हृदयमें बढ़ता है और वही एकमात्र कल्याण तथा भद्र करनेवाला है। उससे बड़ा तो कोई हो ही नहीं सकता, उसके समान भी कोई नहीं है।

इसलिये एकमात्र उस प्रभुकी ही स्तुति करो। स्तुति चाहे जिस नामसे करो, क्योंकि ये सब नाम उसीके हैं। किसी नामसे स्तुति करो—यह समझकर करो कि हम किसी मनुष्यकी स्तुति नहीं कर रहे हैं, उस परमात्माकी कर रहे हैं। उसकी स्तुति करोगे और ऊपर बताये हुए उचित ढंगसे स्तुति करोगे तो उसका फल अवश्य मिलेगा, क्योंकि वह सर्वज्ञ है। उससे भिन्न किसीकी स्तुति मत करो।

हमें किसकी स्तुति करनी है, स्तुति किस प्रकार करनी है—यह समझकर और स्तुति करनेके योग्य बनकर स्तुति करेंगे तो अवश्य सफल होगी, कामना अवश्य पूर्ण होगी।

स्तुतिके परिणाम

१. त्वं हि देव वन्दितो हन्ता दस्योर्बभूविथा ।

(अ० १ । ७ । १)

२. भूरेर्दातारं सत्पतिं गृणीषे स्तुतस्त्वं भेषजा रास्यस्मे ।

(ऋ० २ । ३३ । १२)

३. न स्तोतारं निदे करः ।

(ऋ० ३ । ४१ । ६)

४. नूनं स्तोतॄन्पात्यंहसः ।

(ऋ० ९ । ५७ । ४)

उरुष्याग्ने अंहसो गृणन्तम् ।

(ऋ० १ । ५८ । ८)

१. परमेश्वरकी सची वन्दना करो; वह तुम्हें कष्ट पहुँचानेवाले सब दस्युओंको मार देगा—नष्ट कर देगा।

२. प्रभु सच्चे दिलसे स्तुति किये जानेपर सब रोगोंकी दवा देता है। रोग, अभाव, अशक्ति—सब एक प्रकारके रोग हैं। और इन सबकी दवा वही देता है।

३. सच्चे स्तोताकी निन्दा नहीं होती। उसपर कितनी ही आपत्तियाँ आयें; कष्ट आयें, पर वह कभी प्रभुकी निन्दा नहीं करता, उसे कभी दोष नहीं देता।

४. स्तोताकी पापसे रक्षा होती है; क्योंकि सच्चा स्तोता जान-बूझकर तो कोई पाप कर नहीं सकता। अनजानमें वह जो भी अपराध या पाप करता है, परमात्मा उससे उसकी रक्षा करता है। अथवा उसे जो फल मिलता है, उस कष्टको वह कष्ट ही नहीं मानता।

इस प्रकार हमने देखा कि दुनियाकी ऐसी कोई वस्तु नहीं जो स्तुतिसे न मिलती हो, ऐसी कोई कामना नहीं जो स्तुतिसे पूरी न हो सकती हो। स्तुति कामदुघा धेनु है—कल्पवृक्ष है।

स्तोता कैसा हो ?

१. स्तोता मे गोसखा स्यात् ।

(ऋ० ८ । १४ । १)

प्रभुका सच्चा स्तोता वह है, जो गोसखा हो।

१. एक गोसखा—गोपाल—गौओंकी सेवा-रक्षा करनेवाले।

२. एक गोसखा—वेदवाणीके मित्र—वेदका स्वाध्याय करनेवाले।

३. एक गोसखा—पृथ्वीका मित्र—कोई भी राजा या नेता हो सकता है। और एक—

गोसखा कोई भी जितेन्द्रिय—संयमी व्यक्ति हो सकता है। ये चार प्रकारके सभी व्यक्ति परमेश्वरके सच्चे स्तोता हैं।

२. स्तोता वो अमृतः स्यात् ।

(ऋ० १ । ३८ । ४)

जो व्यक्ति जगत्में अमर हैं या अमर होंगे, समझ लो, वे सब प्रभुके सच्चे स्तोता हैं। ऐसे स्तोता प्रत्येक देशमें, प्रत्येक धर्ममें, प्रत्येक क्षेत्रमें होते हैं। वसिष्ठ और विश्वामित्र, गौतम और भरद्वाज, मोहम्मद और ईसा, तिलक और गांधी, दयानन्द और श्रद्धानन्द, लिंकन और केनेडी, हिटलर और नेपोलियन—ये सब लोग अमर हैं और प्रभुके सच्चे भक्त हुए हैं।

३. पाहि गुणतः शूर कारून् ।

(ऋ० ५ । ३३ । ७)

प्रभु उन्हीं स्तोताओंकी रक्षा करता है, जो स्तुतिके अनुकूल कार्य करते हैं।

४. तेन स्तोतृभ्यो आभर नृभ्यो नारिभ्यो अत्तवे ।

(ऋ० ८ । ७७ । ८)

'स्तुति करनेवाले नर-नारियोंको खानेभरको दे। अर्थात् परिग्रहके लिये मत दे। जो परिग्रही है, समझ लो, वह सच्चा स्तोता नहीं है, उसे प्रभुपर पूरा भरोसा नहीं है। यदि प्रभुपर सच्चा भरोसा हो तो परिग्रह-संग्रह किसलिये? सच्चे स्तोताको कुछ नहीं चाहिये; क्योंकि जगत्के सब पदार्थ-सुख उसके पिताकी सम्पत्ति हैं। जब उसे जिस चीजकी जरूरत होगी, अवश्य मिल जायगी।

संकेत यह है कि मनुष्यको अपनी आवश्यकतासे अधिक संग्रह नहीं करना चाहिये। जो परिग्रही नहीं होगा, उसे या उसकी संतानको भोग-विलासमें पड़नेकी संभावना नहीं रहेगी।

ऐश्वर्यशालीसे ही याचना की जाती है। अपनेसे बड़ेसे याचना या प्रार्थना करनेमें किसीको हिचक अथवा अपमानका बोध नहीं होता। किंतु बराबरवाले या छोटेसे माँगनेमें मनुष्य अपमान अनुभव करता है।

याचना तथा दानके प्रकार

परमेश्वरके समान ही कोई नहीं, तब बड़ा होनेका तो प्रश्न ही नहीं है। इसलिये परमेश्वरसे याचनामें कोई अनौचित्य नहीं। कोई देता है तीन अवस्थाओंमें—प्रसन्न होनेपर, किसी भय या दबावसे अथवा प्रतिफलके रूपमें। परमेश्वरके लिये डरने या दबावका प्रश्न ही नहीं। प्रतिफल या कर्मफलके रूपमें तो बिना याचनाके प्रतिक्षण मिलता ही रहता है और वह देता ही रहता है।

इसलिये पारिशेष्यात् (प्रसन्नताकी स्थितिमें) ही देनेकी बात उठती है। यद्यपि बहुत बारीकीसे सोचें तो उनका दान या हमारी याचनाको पूरा करना कर्मफलके ही अंदर आ जाता है, तथापि लौकिक दृष्टिसे देखें तो प्रतिफलरूपमें देते हुए भी यदि प्रसन्नताके साथ दिया जाय तो उसका दाता और प्रतिग्रहीता दोनोंपर विशेष प्रभाव पड़ता है। इसलिये इस रूपमें कथन किया गया है कि वह प्रसन्न होनेपर देता है—यह बात दूसरी है कि वह प्रसन्न हमारे कार्योंके द्वारा ही होता है।

यह तो हुआ दानका प्रकार। अब याचनाके प्रकारपर विचार करते हैं। लोकमें याचनाके भी तीन प्रकार दिखायी देते हैं—

(क) लोग भीख माँगते हुए प्रतिदिन और प्रत्येक क्षेत्रमें देखे जा सकते हैं। दाता उनकी आवश्यकताका अनुभव करके, उनके दुःखसे द्रवित होकर, स्तोताओंकी परार्थ-वृत्ति एवं सेवाभावकी उपयोगितासे प्रभावित होकर देता है।

इस प्रकारके दानमें बहुत बार दाता न चाहते हुए भी, अप्रसन्नतासे, अपनी इज्जतके लिये भी देता है। यह याचना-प्रार्थनाका तरीका सबसे सामान्य है। जगत्की प्रार्थना, याचना तथा दान अधिकतया इसी श्रेणीमें आते हैं।

(ख) इसके अतिरिक्त याचनाका एक इससे अधिक सभ्य तरीका है। वह यह कि किसी मन्त्रीको या दाताको बुलाकर उसका स्वागत कीजिये, उसे सभापति बनाइये, अभिनन्दन-पत्र दीजिये। अपनी संस्था या प्रवृत्तिका परिचय और दिग्दर्शन कराइये।

वह मन्त्री या दानी आपके स्वागत, मान, अभिनन्दनसे प्रसन्न होकर, आपकी आवश्यकताको अनुभव करके और यह समझकर कि यह दान या सुविधा उसकी सामर्थ्यमें है, वह आपकी आवश्यकताको पूरी कर देता है।

(ग) एक तीसरे प्रकारके लोग हैं। वे यह अनुभव करते हैं कि क्यों किसीके आगे हाथ पसारें या क्यों किसीसे कुछ माँगें। जो मिलता है, उसीमें काम चलायेंगे।

किसी मन्त्री या दानीकी चापलूसी या अभिनन्दन आदि भी क्यों करें? हमें तो अपना कर्तव्य-पालन करना है।

अपना काम अधिक-से-अधिक योग्यता और तत्परतासे करना है।

यदि काम उपयोगी है, 'जनहिताय' है तो परमात्मा आप पूरा करेगा। जो हमारे परिचित हैं, जो हमारे कामको देखते हैं, वे स्वयं पूरा करेंगे। हमें तो न माँगना है, न कामकी उपेक्षा करनी है। सबके साथ यथायोग्य व्यवहार करना है।

ये तीन प्रकार ही क्रमशः वैदिक परिभाषामें प्रार्थना, स्तुति और उपासना हैं। वेद-मन्त्रोंमें प्रार्थना तो सहस्रों बार और नाना वस्तुओं, गुणों और कामनाओंके रूपमें की गयी है।

स्तुतिका प्रकार यह है कि परमात्माके या उसकी किसी शक्ति या अभिव्यक्तिके रूपके गुणोंका वर्णन किया गया है। इस प्रकारके भी सहस्रों मन्त्र हैं।

उपासनाका रूप यह है कि वह परमात्माको अपनी मोक्षावस्था अथवा देह-रहित शुद्धावस्थाका स्मरण कराता है। उसमें और अपने आपमें समानताकी अनुभूति प्रकट करता है। यह स्थिति बहुत कम लोगोंमें होती है। इसलिये उपासनाका दिग्दर्शन करानेवाले मन्त्र भी बहुत थोड़े हैं।

इन तीनों प्रकारके मन्त्रोंका दिग्दर्शन क्रमसे कराया जाता है।

प्रार्थना—जिन मन्त्रोंमें किसी चीजकी याचना, कामना, इच्छा, प्रार्थना की गयी हो, वे प्रार्थना-मन्त्र हैं।

स्तुति—जिनमें किसीके गुणोंका वर्णन किया हो, किसीकी महत्ताको प्रदर्शित किया गया हो, किन्हीं तथ्योंका निदर्शन किया गया हो, वे 'स्तुति-मन्त्र' हैं।

उपासना—जिनमें एकताका वर्णन हो, समानता और समीपताका—साथ बैठने या होनेका वर्णन हो, वे 'उपासना-मन्त्र' हैं।

विधि—किंतु एक प्रकारके मन्त्र हैं, जिनमें परमात्मा हमारे लिये उपदेश या कर्तव्य-विधान करता है, उनको उपर्युक्त विभागमें सम्मिलित नहीं किया जा सकता।

(क) और एक मन्त्र उपासना-मन्त्र है। मैं कल्पना करता हूँ कि वेदोंके सम्पूर्ण मन्त्रोंमें भी प्रार्थना, स्तुति एवं उपासना-मन्त्रोंका अनुपात ३-४ और १ का है।

(ख) कोई भी प्रार्थना करनेसे पूर्व थोड़ी-बहुत स्तुति आवश्यक है।

(ग) उपासना बड़ी अस्पष्ट और भावनात्मक है। उसके लिये पार्थिव शरीरसे उपस्थित होना आवश्यक नहीं। वह अन्तःकरण एवं आत्मासे काल्पनिक रूपमें भी हो सकती है। और उसकी अन्तिम स्थितिमें पहुँचकर किसी भी प्रकारके शब्दोंकी आवश्यकता नहीं रहती।

परम स्वतन्त्रकी परतन्त्रता

सखी ! मोय कारौ नाग डस्यौ।
ब्यापि गयौ बिस नस-नस बरबस, उर तें जगत खस्यौ॥
बिस बगराय भुजंगम भीषन, मृदु मधु हँसी हँस्यौ।
हँसतहि बिस अति भयौ मधुर सो, अवसर पाइ धँस्यौ॥
बिस भयौ अमिय, नाग पुनि मोहन मधु मधुरिमा लस्यौ।
करत कलोल कलित अकलन रस-सुधा-स्रोत निकस्यौ॥
स्याम मनहि सौं एकमेक मन अमन होइ विकस्यौ।
को जानै, कब लौं यौं मोहन मो महँ रह्यौ धँस्यौ॥
जाके नाम कटत भव-बंधन, सो स्वयमेव फँस्यौ।
है परतंत्र सुतंत्र परम सो अपनेहिं बंध कस्यौ॥

स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते

[गङ्गातटवासी तपस्वी श्रीमस्तरामबाबाका एक प्रवचन]

(प्रेषक—श्रीयुत रतनलालजी)

[१]

बड़ी वस्तुका ज्ञान होनेसे छोटी वस्तुकी कामना नहीं होती अथवा विशेष लालसा नहीं होती । आधारकी जानकारी होनेपर आधेयकी आवश्यकता नहीं होती । होती भी है तो गौणरूपसे । जैसे भूमि मिल जाय तो अनाज स्वतः उसमेंसे उत्पन्न कर लिया जायगा । भूमिके मिल जानेपर अनाज तो उसमेंसे मिलेगा ही, क्योंकि भूमिमें ही एक प्रकारसे अनाजका अक्षय भंडार है । भूमि अनाजका आधार है और अनाज आधेय है । जैसे किसी विरक्त महात्मासे पूछा जाय कि आपको एक मन अनाज दें या एक बीघा जमीन दें तो वे कहेंगे कि हमको न तो एक बीघा जमीन चाहिये न एक मन अनाज ही चाहिये । वे बड़ी और छोटी सभी कामनाओंसे मुक्त हैं; इसलिये वे कहेंगे कि हमको तो रोटी ही चाहिये । क्योंकि भोजन करना तो स्वाभाविक है; यदि भोजन कोई न करे, ऐसे ही बैठा रहे, तो समाज उसको भोजन करनेके लिये बाध्य करेगा । न उसको भूमिकी कामना है, न उसको अन्नकी कामना है । इसीको कहते हैं—'प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान् ।' जिनकी बुद्धि न अन्नके लिये, न भूमिके लिये चलायमान होती है, वह स्थितप्रज्ञ है ।

इसी बातको दूसरे दृष्टान्तद्वारा स्पष्ट किया जाता है । एक ओर सौ रुपये रक्खे जायँ और एक ओर एक सेर मिठाई रख दी जाय और दोनोंमेंसे एक वस्तुको लेनेके लिये कहा जाय तो जो बालक होगा, वह मिठाई ले लेगा और जो बड़ा होगा, वह रुपया ले लेगा । मिठाई रुपयेके अधीन है । यह आधार-आधेय सम्बन्ध है । बालक रुपयेका महत्त्व नहीं जानता, इसलिये वह रुपयेकी ओरसे निष्काम है । महात्मा रुपये एवं मिठाई दोनोंके विषयमें जानते हैं और कामनाके स्वरूपको भी जानते हैं; इसलिये वे न रुपया लेंगे न मिठाई ही लेंगे । वे तो जीवननिर्वाहके लिये भिक्षामात्र ही स्वीकार करेंगे अथवा भगवान्‌का प्रसाद मानकर ही ग्रहण करेंगे । कारण सारा विश्व परमेश्वरके आधारपर आधारित है, इसलिये महात्माको वह परमात्मा ही प्रिय है । जैसे अन्न भूमिके आधारपर है, मिठाई रुपयेके आधारपर है, उसी प्रकार सभी वस्तुएँ परमेश्वरके आधारपर हैं । महात्माकी जानकारी विशेष है, इसलिये वे सब कामनाओंको छोड़कर अपने प्रिय परमात्माको ही चाहते हैं ।

एक महात्मा किसी साधुके आश्रमपर पहुँचे । साधुने कहा कि 'भोजनकी व्यवस्था नहीं है, इसलिये आप यहाँसे पधारिये ।' थके होनेके कारण वे महात्मा बैठे रहे तो साधुके मनमें विचार हुआ और उन्होंने खिचड़ी लाकर महात्माको दी और कहा—'बनाओ और पा लो ।' महात्माने उसमेंसे आधी मुट्ठी ले ली और कच्ची खाने लगे तो साधुने सोचा कि ये तो कच्ची ही खा रहे हैं, तब उसने रोटी बनाकर दी । इस कथाको कहनेका अभिप्राय यह है कि ऐसे निष्काम पुरुषको जितनी आवश्यकता होती है, उतना ही वे लेते हैं । परंतु त्याग जिस भावसे किया जाता है, उसी प्रकारका कहा जाता है—सात्त्विकी, राजसी अथवा तामसी । यदि कोई आत्मामें ही संतुष्टिके कारण ग्रहण नहीं करता, तब तो वह स्थितप्रज्ञ है, नहीं तो किसी दूसरी अपेक्षाकृत बड़ी सांसारिक कामनासे ग्रहण नहीं करता, अर्थात् अधिककी इच्छासे थोड़ा नहीं चाहता, तो संसारी है । सारा विश्व परमेश्वरका ही है । इसलिये थोड़ा एवं बहुत सब परमेश्वरके ही समर्पण कर देना चाहिये । जो कुछ भी हमें अपना प्रतीत होता है अथवा हमको उपलब्ध हुआ है, उसे वर्ण और आश्रमके अनुसार, देशके अनुसार, धर्मपूर्वक जीवन-निर्वाह मात्रके लिये ग्रहण करें, तब तो वे विषय प्रसादरूप हो जाते हैं । इसके विपरीत भगवान्‌को भी जो प्रसाद लगाया गया है, उसको रागद्वेषपूर्वक ग्रहण करें, तो वह भी विषयरूप ही है । जो हमारे वर्णाश्रमके अनुसार हमारे पास है, वह प्रसाद ही है, चाहे उसमें सुख प्रतीत हो चाहे दुःख । 'स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ।' इसके अतिरिक्त 'विहाय कामान् यः सर्वान्' ...... इस श्लोकमें भी जो संसारी कामनाएँ हैं, उनको छोड़नेकी बात कही गयी है । महात्माओंको सत्त्वगुणप्रधान फल मिले अथवा अन्य जो कुछ भी मिल जाय,

कामना न होनेसे वे उसीको भगवत्प्रसादके भावसे ग्रहण कर लेते हैं। आग्रहकी भावना न हो—चाहे जो चीज मिले, चाहे जितनी मिले, उसको पवित्र भावनासे प्रसन्न होकर सेवन करना ही प्रसाद ग्रहण करना कहलाता है। जो कामनासे कर्म करते हैं, वे तो कुलीकी तरह कर्मका बोझा ही ढोते हैं। उनको ज्ञानसे भी अहंकार ही उत्पन्न होता है, इससे उनमें ज्ञानकी गरमी होती है; इस प्रकार वे कर्मके बोझे और ज्ञानकी गरमीसे संतप्त रहते हैं। उनके कर्म काम, क्रोध, लोभादिसे युक्त होनेसे वे वैसे ही डूब जाते हैं, जैसे बोझेवाला मनुष्य डूब जाता है। और अहंकार भी एक भारीपना ही है, इसलिये ज्ञानकी गरमी और शास्त्रज्ञानसे युक्त कामनावाले साधक भी कैसे पार हो सकते हैं ? कामना यदि पूरी हो जाय तो लोभ उत्पन्न होता है और यदि व्यवधान पड़ जाय तो क्रोध उत्पन्न हो जाता है। कामनासे ही क्रोध, लोभ, मद-मत्सर आदि उत्पन्न होते हैं। कामनाके रहनेसे ही विषयोंका ध्यान होता है और क्रमशः अन्तमें विनाश हो जाता है; अतएव जो वस्तु मिले, जितनी मिले, उसको पवित्र भावनासे प्रसन्न होकर सेवन करना ही प्रसाद है। यह जीवन भी प्रसाद ही है। किसीको उच्च जाति मिली है, किसीको नीची जाति मिली है, किसीको ऊँची पदवी मिली है, किसीको नीचा पद मिला है; पर भगवद्भावसे प्रेमसे उसको स्वीकार करते हुए जीवन-निर्वाह करना चाहिये। ऊँची पदवी या जातिके अनुसार रहें भले ही, पर उसमें अहंकार नहीं करना चाहिये। ऐसे ही नीची पदवी या जातिमें हीनता नहीं माननी चाहिये; क्योंकि वह प्रसाद है। जाति अथवा कर्मसे राग-द्वेष न करे तो उसे ग्रहण करना प्रसादकी तरह ही है। 'इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।' इन्द्रियोंके विषयोंमें स्वाभाविक ही राग-द्वेष होता है। अतएव राग-द्वेषके वशमें न हो; क्योंकि जो इन्द्रियोंके अनुकूल विषय हैं, उनमें राग होता है और जो प्रतिकूल विषय हैं, उनसे द्वेष होता है। जैसे नाकके लिये सुगन्ध रागका विषय है तथा दुर्गन्ध द्वेषका विषय है। इसी प्रकार कानके लिये मधुर और कठोर शब्द और त्वचाके लिये कोमल तथा कठोर स्पर्श क्रमशः राग और द्वेषके विषय होते हैं। जब राग और द्वेष हैं और ये ही प्रबल शत्रु हैं, तब फिर कैसे छुटकारा होगा ? इसके लिये भगवान् कहते हैं—'श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः······'अपना धर्म यदि कठोर, दुर्गन्धमय कर्मयुक्त, नीचा तथा अपमानयुक्त हो, तो भी उसको धर्म समझकर स्वीकार करे; परधर्म चाहे सुगन्धयुक्त हो, सम्मानयुक्त हो, चाहे लोकदृष्टिमें बड़ा हो, तो भी उसको परधर्म समझकर ग्रहण नहीं करना चाहिये और कटुता सेवन करना धर्म हो तो उसका ही सेवन करना चाहिये। इस प्रकार सब धर्मानुकूल कामनाकी व्यवस्था होती है; नहीं तो फिर, कामना तो कामना ही ठहरी। उसका अन्त कहाँ हो सकता है ?

भूलोक, स्वर्गलोक, ब्रह्मलोक—सभीके लालचको जिसने त्याग दिया है, वही बुद्धिमान् तथा निष्कामी है। परंतु साधकको भूलोकके विषयोंसे ही त्याग प्रारम्भ करना चाहिये; क्योंकि वह तो भूलोकके विषयोंसे ही बँधा हुआ है। स्वर्गसे तो तब बँधेगा, जब स्वर्ग उसको उपलब्ध होगा। स्वर्गकी कामना तो बादमें है, पहले तो विषयोंकी ही कामना मारे जा रही है; विषयोंकी कामना छोड़नेवालेको ही स्वर्गलोक या ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। विषयोंकी ही कामना जिसको हो, उसे स्वर्ग और ब्रह्मलोककी प्राप्ति सम्भव नहीं है। जैसे कोई भूलोककी ही कुरूप स्त्रीसे बँधा हो तो स्वर्गकी अप्सरा उसको कैसे उपलब्ध होगी ? जो मोटरोंमें बैठकर आनन्द या गौरवका अनुभव करता है, वह स्वर्गकी कामना नहीं करता—ऐसा सोचना कैसे सम्भव है ? इसलिये भूलोककी कामनाओंकी व्यवस्था सब कामनाओंकी व्यवस्था है। राग-द्वेषसे रहित होकर जो भगवान्‌का कर्म करता है, वह व्यवस्थित है। जो कर्म और कर्मके फलका परित्याग कर देता है अर्थात् जो लौकिक आधार और आधेयको छोड़ देता है, वही व्यवस्थित है। कर्मको छोड़नेका अभिप्राय कर्ममें जो राग-द्वेष है, उसको छोड़नेसे है। जैसे गुरुजन जो संसारसे उपराम हैं, जो राग-द्वेषसे रहित हैं, जिनका जीवन शास्त्रीय पद्धतिके अनुसार है, वे आज्ञा करें तो उस आज्ञाका भलीभाँति पालन करना साधकोंका स्वधर्म है और मनमानी विधिसे कर्म करना कर्म है, उसमें राग-द्वेष सहज होंगे ही। कोई कहे कि परमेश्वरके लिये तो कामना होनी ही चाहिये, तो उसका उत्तर है कि आत्मा तो हम हैं ही और परमेश्वरके अंश भी हैं ही, तो हम कैसे उनसे भिन्न हो सकते हैं और अभिन्न होनेपर फिर कामना हो ही कैसे सकती है ?

कामनाओंके तीन विभाग हैं—लोकैषणा, वित्तैषणा और पुत्रैषणा। आत्मासे भिन्न इन कामनाओंका ही त्याग

करना चाहिये। यही है 'प्रजहाति यदा कामान् सर्वान्…।' सर्वधर्म अथवा कामनाओंको छोड़नेका अभिप्राय सांसारिक कर्म अथवा धर्मोंसे है; क्योंकि संसारमें ही अनेक धर्म तथा अनेक कर्म हैं। आत्मा तथा परमेश्वर तो एक ही हैं। उनमें बहुत्वकी कल्पना ही नहीं है। जो अपनेमें ही महान् है, वह महान् है। जो अच्छा भोजन करनेसे प्रसन्न हुआ, वह क्या प्रसन्न हुआ; जो अच्छा वस्त्र पहनकर प्रसन्न हुआ; वह क्या प्रसन्न हुआ, जो बहुत द्रव्य प्राप्तकर प्रसन्न हुआ, वह क्या प्रसन्न हुआ; जो राज्य प्राप्त करके प्रसन्न हुआ, वह क्या प्रसन्न हुआ। जो इन बाह्य विषयोंके बिना भी सदा प्रसन्न है, जो अपनेमें ही प्रसन्न है, वही स्थितप्रज्ञ है। कोई वस्तु बन्धनका हेतु नहीं है। अपनी कामना (या ममता) ही बाँधती है। जैसे कोई कहता है कि अमुकने मुझे बलात् अमुक वस्तु या रुपया दे दिया, हमारी कुटियामें फेंक गये, मेरी पुस्तकमें रख गये या मेरे कपड़ेमें बाँध गये—ऐसा कहना ठीक हो सकता है। परंतु भीतर तो तुमने अपनेसे ही बाँधा है। जबतक कोई मनसे स्वीकार नहीं करेगा, तबतक बाहर ही बँधा रह जायगा; कपड़ेमें बँधा रह जायगा। इस प्रकार धन किसीको बाँधता नहीं है, हमारी कामना (तथा ममता) ही धनसे हमको बाँधती है। पर वस्त्र छोड़नेका इतना महत्त्व नहीं है, कामना (तथा ममता) छोड़नेका ही महत्त्व है। यदि कोई कहे कि हम अपने मनके अनुसार बरतेंगे, तो मन ही तो कामनाका आधार है; वही तो बाँधेगा। इसलिये मनके अनुसार नहीं, बुद्धिके अनुसार बरतना चाहिये।

जनक राजाका दृष्टान्त तो ठीक है; पर वे तो संयमी थे एवं मर्यादाके अनुसार बरतते थे। गृहस्थ होनेके नाते वे गृहस्थोंके ही आदर्श थे, न कि गृहत्यागी महात्माओंके। इसलिये महात्माओंको—जनक आदिको आदर्श न मानकर शुकदेव आदिको ही आदर्श मानना चाहिये। और गृहस्थ लोगोंको भी अपनी निरङ्कुशताके लिये जनक आदिका उदाहरण देना ठीक नहीं; क्योंकि जनकजी जब रामजीसे भेंट करने वनमें गये थे, उस समय उन्होंने भोजनके अवसरपर सबको सावधान करते हुए कहा था—'इहाँ उचित नहिं असन अनाजू……' तो यह उनके संयम एवं आदर्शका प्रमाण है। तपोवनमें भोगोंको भोगना किसी प्रकार भी उचित नहीं, यह उनकी निवृत्ति-प्रियताका प्रमाण है। निवृत्तिप्रिय हुए बिना कोई गृहस्थ जनकके समान नहीं हो सकता। प्रवृत्तिकी प्रधानता बाहरसे भले ही हो, पर भीतरसे निवृत्तिकी ही प्रधानता होनी चाहिये। जिसका अन्तःकरण निवृत्ति-प्रधान है, वह निवृत्त पुरुष तपोवनमें प्रवृत्ति नहीं फैलायेगा। वहाँ वह भोगोंको भोगनेके लिये किसीको प्रेरित नहीं करेगा, न स्वयं भोगेगा। राजा होकर यदि राजसी वस्त्रोंका दान कर दें, तब भी श्रद्धालु लोग उनको राजसी वस्त्र ही पहनायेंगे और शास्त्रीय नियम उनको राजसी वस्त्र पहननेके लिये बाध्य करेंगे। उसके मनमें स्पृहा नहीं है यह उसके भावोंके द्वारा, क्रियाके द्वारा, कर्मके द्वारा वैसे ही प्रस्फुटित होता रहेगा, जैसे पका हुआ आम थोड़ा-सा धक्का लगनेसे रस टपकाने लगता है। उदाहरणके लिये सम्राट् हर्षवर्धन कुम्भके मेलेमें अपना सारा धन दान कर देते थे। उनकी बहिन उनको फटा वस्त्र पहना देती थी और वह वस्त्र भी उनके अधीन राजा-लोग लेकर उनको राजसी वस्त्र पहना देते थे और उन वस्त्रोंको ले लेते थे। संसारी लोगोंका एवं निष्कामी लोगोंका कर्म तो एक ही प्रकारका होता है, उनमें भेद केवल यही है कि निष्कामी स्थान-स्थानपर त्यागकी सुगन्ध बिखेरता है एवं सकामी ग्रहण या लोभकी दुर्गन्ध बिखेर देता है। भिक्षा तो संन्यासी भी करते हैं और भिखारी भी करते हैं; लेकिन उनमें एक अन्तर है कि भिखारीमें भिक्षाके लिये दीनता रहती है, न मिलनेपर चिन्ता होती है और संन्यासीकी भिक्षा चिन्ता एवं दीनतासे शून्य होती है। गीताजीमें पहले आत्मज्ञानकी चर्चा हुई है, फिर स्वधर्मकी चर्चा हुई है। और उसको प्रयोगमें किस प्रकार लायें, इसके लिये कर्मयोगका वर्णन किया गया है। उसके पश्चात् यह कहा गया है कि कर्मयोगके विषयमें जाननेमात्रसे कोई कर्मयोगी नहीं हो सकता अथवा शास्त्रोंकी बात जाननेमात्रसे कोई ज्ञानी नहीं हो सकता; अपितु प्रयोगसे ही जबतक वह ज्ञान अच्छी तरह पच न जाय, स्वाभाविकताको प्राप्त न हो जाय, तबतक ज्ञान ज्ञान नहीं है, शक्ति देनेवाला नहीं है। शास्त्रोंके बहुत ज्ञानसे भी शान्ति नहीं होती।

(२)

ये कामनाएँ तो मक्खियोंसे भी ज्यादा काटती हैं—यह बात महात्मालोगोंको ज्ञात है। किसीका शरीर गंदा हो, उसपर मक्खियाँ भिनभिना रही हों, तो वे उतना कष्ट नहीं

देतीं, जितना कि कामनाएँ कष्ट देती हैं । मक्खियाँ तो रातमें सो जाती हैं, पर कामनाएँ रातमें भी जागती रहती हैं । कामनावाला मन अपना जितना शत्रु है, उतना दूसरा कोई नहीं । कामनावाला मन दुर्दान्त होकर जितना दुःख देता है, उतना दुःख कोई शत्रु नहीं दे सकता । कामनाएँ मनुष्यको बहुत दुःख देती हैं । यह बात बिल्कुल सत्य है कि कामनाएँ प्रज्वलित अग्नि हैं; इसमें जो पड़ता है, वही भस्म हो जाता है ।

जितने सुख हैं, वे मनुष्यको उतनी शक्ति नहीं दे सकते, जितना शान्त मन सुख दे सकता है । किसीको कितनी ही सुख-सुविधा हो, पर असली शान्ति नहीं मिलती, कारण कि ये सुख बाहरके हैं । जो हरे-भरे वृक्षको ही देखता रहता है, भीतरकी आगको नहीं देखता, वह समझदार नहीं है, उसकी बुद्धि स्थिर नहीं हो सकती । यही भगवान् कहते हैं—'प्रजहाति यदा कामान्' ······'कामनाके अभिमुख जिसका मन है, वह मनमुख कहलाता है । जिस-किसीका मन कामनाकी ओर नहीं है, वही गुरुमुख कहा जाता है । किसी-किसीको अपनेमें कामना नहीं दीखती तो वह अपनेको निष्काम समझने लगता है । जिनको कामना नहीं दीखती, राग-द्वेषादि भाव और सुख-दुःखरूप फल ही दीखते हैं, वे नादान साधक हैं; उनको भजनका फल नहीं दीखता, भजनका कष्ट ही दीखता है । भजन ही शीतल जल है; इसके बिना संसारके तापोंसे शान्ति नहीं हो सकती । भजनके बिना शान्ति चाहना वैसा ही है जैसे कोई मरुस्थलीकी ओर जा रहा हो और गङ्गाजल प्राप्त करनेकी इच्छा रखता हो । जिसको संसारमें संताप ही नहीं सूझता, वह तो सांसारिक साधक है । जो कोई ऐसा समझता है कि हम तो त्यागवृत्तिसे रहते हैं, हम तो थोड़ेमें संतुष्ट रहते हैं, हमको क्या है ? यह शरीरगत अभिमान है, उसको अन्तःकरणकी कामनाओंका दमन करना चाहिये । कोई विद्वान् पुरुष कहे कि पढ़ने-लिखनेसे क्या होता है ? उसका अभिप्राय पढ़नेमें जो अहंकार है, उस दूषणको प्रदर्शित करनेमें है; क्योंकि वह भी विद्वान् है । वैसे ही वैरागी भी साधकोंको सावधान करनेके लिये स्थूल त्यागकी आलोचना कर देता है । कर्मके लिये विधि होती है, त्यागके लिये कोई विधि नहीं होती ।

भगवान् कहते हैं कि सब कामनाओंको जो पुरुष कदाचित् छोड़ देता है, तब वह 'स्थितप्रज्ञ' हो जाता है । कामनाओंको छोड़ दो, ऐसी बात उन्होंने नहीं कही । यह कहना वैसा ही है जैसे कोई किसी बालकको कहे कि इस पहलवानको पछाड़ दो; क्योंकि बालक अगर खूब माल खा-पीकर पहलवान बने, तभी वह पहलवानको पटक सकता है । यह कथन निष्प्रयोजन नहीं है । वैसे ही किसीको कामनाओंको छोड़नेकी बात नहीं कही जाती । कोई धोती-कमीज-गहना आदि उतारकर फेंक सकता है, पर उसी प्रकार कामनाओंको नहीं छोड़ सकता । कामनाओंका त्याग तो कर्मयोग करते-करते धीरे-धीरे होता है । कामनाएँ छूट जाती हैं, तभी वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है । जब कामनाओंको छोड़ देता है, तब आत्मामें ही संतुष्ट हो जाता है । वह सब अपनेमें ही देखता है, और सब कामनाएँ उस आत्मामें आकर समाहित होती रहती हैं । आत्मा आधार है, कामनाएँ आधेय हैं । छोटे-छोटे झरने गङ्गाजीमें आकर मिलते हैं । जो व्यक्ति कामनाओंमें फँसा हुआ है और अपने स्वरूपको भूल रहा है, वह सुखी कैसे रह सकता है । जैसे अपने महलमें सिपाहियोंके संरक्षणमें सोया हुआ राजा भी स्वप्नमें जंगलके जानवरोंके बीच भ्रमण करते हुए कष्ट पाता है, क्योंकि वह अपने वास्तविक स्वरूप-को भूल रहा है; वैसे ही जो अपनेको भूलकर संसारमें भटक रहा है, वह कष्ट पाता है । स्त्रियाँ भ्रमसे अपने सुखके लिये पति-पुत्र चाहती हैं; तब सोचो कि अपने आत्मा-में ही परमेश्वर है, वह पति, पुत्र सब कुछ है । कोई कितना ही नजदीक बैठे, तो भी कुछ दूर ही रहेगा; परंतु परमेश्वर कभी दूर हो ही नहीं सकता । जो भाग्यवान् पुरुष परमात्मामें स्थित रहता है, वही वास्तवमें सुखी है । हमारे वस्त्रोंसे भी परमेश्वर अधिक समीप है । हमारी भूल है कि हम अपने शरीरको ही देखते हैं । सब जीव परमात्माके अंश हैं । हममें और ईश्वरमें कोई भेद नहीं है, जैसे अग्निमें और उष्णतामें कोई भेद नहीं है । आत्मा तो कभी नष्ट नहीं होता, उसकी चिन्ता करना व्यर्थ है । शरीर तो अवश्य नष्ट होगा, इसके लिये क्या चिन्ता करनी है ? अगर चिन्तन करना है तो धर्मका चिन्तन करे । कर्मयोगके द्वारा स्थितप्रज्ञता प्राप्त होती है और आत्माके ज्ञानसे ज्ञानयोगकी प्राप्ति होती है । धर्मके लिये क्षत्राणी अपने परम प्रिय पति-पुत्रको युद्धमें भेजती है । पंजाबमें हकीकतराय हुए, जिन्होंने धर्मके लिये हँसते-हँसते अपना शरीर छोड़ दिया । वह रोती हुई शोकातुर माताकी ओर नहीं देख रहा था, माताके दूधकी ओर ही देख रहा था । जिसको जो सुहाता है, वही अच्छा लगता है । विषयी पुरुषको विषय ही प्रिय लगते

हैं; पर धर्मात्मा मनुष्योंको धर्म ही अच्छा लगता है। इसलिये धर्मके लिये ही जीना उचित है और धर्मके लिये मरना विहित है। पर अपने सुखके लिये रोना और हँसना ठीक नहीं। पिता-पुत्र आदिके दुःखको देखकर दुखी होना धर्म है; पर आत्मस्वरूपको देखनेपर अपने सुख-दुःखके लिये रोना-हँसना नहीं होता। अपनेमें जो संतुष्ट हो जाता है, वह 'स्थितप्रज्ञ' है। कामनाओंके छूट जानेपर ही यह सम्भव है। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' से जो कहा गया है, उसके अनुसार कर्म करनेपर क्रमशः कामनाएँ छूट जाती हैं। जिसका मन अपने-आपमें ही संतुष्ट रहे और दूसरा कुछ नहीं दीखे, तो आत्मा ही दीखता है। आत्मानन्द लौकिक हर्ष-जैसा नहीं है। आत्मामें ही बिना वस्तुके, बिना कामनाके भी प्रचुर आनन्द है। जहाँ विषयानन्द होता है, वह झूठा होता है और शोकमें परिणत हो जाता है। धन मिलनेपर हर्ष और धन चले जानेपर शोक होता है। पृथ्वीको धन आनेसे हर्ष नहीं, धन चले जानेसे शोक नहीं। चाहे भूगर्भमें है या राजाके खजानेमें, रहा तो पृथ्वीपर ही।

जो फलको छोड़नेमें समर्थ होता है, वही कामनाको छोड़ पाता है। कामना छोड़नेवाला ही सुकृत-दुष्कृतको छोड़ सकता है। सुकृत-दुष्कृतको छोड़नेवाला ही सुख-दुःख सहन करनेमें समर्थ हो सकता है और वही आनन्द पा सकता है। जो बिना विषयोंके ही भीतर आनन्द पाता है, वही स्थितप्रज्ञ है। जो आत्मामें ही संतुष्ट है, मौजमें ही जो मौज देखता है, वही स्थितप्रज्ञ है। इस प्रकार जो सुख-दुःखमें साम्य प्रतिष्ठित करके दोषोंको जला देता है, वह 'स्थितप्रज्ञ' हो जाता है।

'यदा ते मोहकलिलम्।' यह शरीर मोहकलिल है—हड्डी, मांस, मज्जा, रक्त। ऐसा ही होता है कलिल—कीचड़। मोहकलिलमें भी लोग सौन्दर्य देखते हैं, लहूका कीचड़ है यह शरीर। इसमें ही रमणीय भाव रखते हैं और खूब सजाते हैं, इसलिये कि बुद्धि मोह-कलिलमें फँसी हुई है। इसीके लिये पापकर्म करते हैं और इसमें ही सुख देखते हैं; पर यह दुखी है, इसलिये दुखी होते हैं। एक बार गोपीचंदको बहुत-सी स्त्रियाँ स्नान करा रही थीं और भाँति-भाँतिके सुगन्धित द्रव्य लगा रही थीं, पर उनकी माँ यानी बुद्धि जो ऊपर थी, वह देख रही थी कि इस शरीरको इत्र लगा रहे हैं, ये मोह-कलिलमें फँसे हैं। उसकी आँखोंसे आँसू आ गये कि आज तो स्नान करा रहे हैं, पर एक दिन इसे फूँक दिया जायगा या गीध खा जायँगे। शरीरमें इत्र नहीं है, इसलिये लगा रहे हैं—उसमें सफाई नहीं है तो सफाई कर रहे हैं, यानी दुर्गन्धको ढाँपनेके लिये ऐसा करते हैं; क्योंकि ऐसा न करें तो दुर्गन्ध तो उसका स्वरूप ही है। पीतलको मलते हैं, नहीं तो काला पड़ जाता है; सोनाको साफ करनेकी जरूरत नहीं। गोपीचंदकी माँकी आँखोंमें गरम आँसू निकल गया। तप्त पुरुषकी आँखोंसे हृदयकी तापसे आँसू गरम हो जाते हैं। गोपीचंदने अपनी माँकी ओर देखा तो माँ—बुद्धि रो रही थी। गोपीचंदको इन्द्रियविजयी कह सकते हैं। यह इतिहास भी है, दृष्टान्त भी है।

प्रभुकी वस्तुसे प्रभुकी पूजा करते रहो

करते रहो निरन्तर प्रतिदिन प्रतिपल मन-मतिका उत्कर्ष।
शुद्ध भाव, शुचितम विचारको सदा बढ़ाते रहो सहर्ष॥
सदा दूसरोंके सुख-हितका पावन मङ्गलमय कुछ काम।
तन-मन-वाणीसे शुचि प्रभुकी सेवा समझ करो निष्काम॥
पर न करो कर्तव्य आदिका मनमें किंचित् भी अभिमान।
प्रतिफल पुरस्कार मत चाहो; पूजो समुद सहज भगवान॥
प्रभुकी वस्तु, प्रेरणा प्रभुकी, लेनेवाले भी प्रभु आप।
अर्पण करते रहो सर्वदा मिटा असत् ममताकी छाप॥

वेणुगीत*

(श्री'श्रीकृष्णप्रेमी' महाराज-विरचित एवं श्रीयुक्त टी० सी० श्रीनिवासनद्वारा अनूदित)

'वृन्दावन !' यह 'वृन्दावन' शब्द ही कितना मधुर और कोमल है ! वृन्दावनकी शोभा सर्वदा मधुर एवं रम्य है। रसिकोंका हृदय वृन्दावनसे भरा रहता है और वृन्दावनका यह स्मरण ही निरन्तर उनके लिये आनन्ददायक होता है। 'वृन्दावन' इस शब्दकी मधुरिमा कैसी अद्भुत और अचिन्त्य है। इसके साथ श्रीकृष्ण, जो मूर्तिमान् माधुर्य हैं एवं उनकी मधुर मुरलीकी तान भी मिल जाय तो फिर कहना ही क्या। हाँ, इस अप्रतिम माधुर्यका रसिक व्रजवासी ही रसास्वादन कर सकते हैं। गोकुलकी उन गोपियोंका सौभाग्य तो अचिन्त्य है, जो श्रीकृष्णके प्रेममें निमग्न रहती हैं, जिनके हृदयमें श्रीकृष्ण, उनकी मुरली-ध्वनि तथा उनका रङ्गमञ्च वृन्दावन— इन तीनोंके अतिरिक्त किसी अन्य वस्तुके लिये स्थान ही नहीं और जो लोक-वेदके समस्त बन्धनोंको तोड़कर स्वेच्छासे उनके साथ सर्वदा शुकवत् संलाप करती रहती हैं। भगवान् श्रीशुकके मुखसे निकले वचनोंसे हमें विदित होता है कि ऐसा एक महान् आनन्द विद्यमान है। ऐसे परम मधुर वचनोंके प्रदाता श्रीशुकको कौन-सा दूध या फल समर्पण करके उनके ऋणसे मुक्त हो सकते हैं। श्रीकृष्ण ! यह सब तेरी ही अपार करुणा है। तूने ही मुझको अपने उस प्रेमका पात्र बना दिया है, जो ऋषि-मुनियोंको भी दुर्लभ है।

श्रीकृष्ण है श्रीयशोदा मैयाका लाड़ला लाल ! परंतु वह रहता है सदा अपने निज वृन्दावनमें विहरण करता। वहाँ श्रीकृष्णका एकमात्र काम है अपने सम्मुख स्थित एक-एक वस्तुपर परम प्रेम तथा अकारण करुणाकी वर्षा करना। जो भाग्यवान् जन श्रीकृष्ण-प्रेमके एकमात्र पात्र बनना चाहें, उन्हें उचित है कि वे उस प्रेममें बँधकर अपनेको प्रेमका दास बना लें। गोपियाँ इसी प्रकारकी श्रीकृष्णकी प्रेम-दासियाँ हैं। उनके अंदर और बाहर सर्वत्र हैं—श्रीकृष्ण। उनके जागरण तथा स्वप्नमें हैं—श्रीकृष्ण। उनके वदनमें—उनके वचनमें हैं श्रीकृष्ण। अधिक क्या, उनके प्रत्येक श्वासमें श्रीकृष्ण ही स्फुरण करते रहते हैं। श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तुका ज्ञान ही नहीं है गोपियोंको। श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण, कन्हैया, कन्हैया, कन्हैया—सदा-सर्वदा— यही उनके चिन्तन और वचनका विषय है। श्रीकृष्ण ही उनके प्रियतम हैं। वे ही उनके चित्तचोर हैं। गोपियोंकी आँखोंकी पुतली हैं—कन्हैया; उनके जीवरत्न हैं श्रीकृष्ण।

गोपियाँ क्षणभरके लिये भी श्रीकृष्णसे वियुक्त होकर नहीं रह सकतीं। इस अवस्थामें श्रीकृष्ण यदि प्रातःकाल घरसे निकलते हैं और यमुनाजीके तटपर खेलते-खेलते सायंकालतक घर नहीं लौटते तो बेचारी गोप-बालिकाएँ क्या करेंगी ? क्या वे श्रीकृष्णके विरहका सहन कर सकती हैं ? श्रीकृष्ण उनके पास रहें तो उनसे कुछ-न-कुछ वार्तालाप करती रहेंगी। पर जब श्रीकृष्णसे वियुक्त हों तो उन्हींके सम्बन्धमें वचन बोलती रहेंगी। इसके अतिरिक्त उन्हें दूसरा कोई काम नहीं। हम क्या जानें कि वे गोपियाँ श्रीकृष्णके सम्बन्धमें क्या-क्या बोलती हैं ? भगवान् श्रीशुकने हमें बताया है, परंतु वह अत्यन्त स्वल्प है।

वही है—'वेणुगीत'। गोपियोंके वचन ही 'वेणुगीत' हैं। श्रीकृष्णकी मुरलीसे सम्बद्ध उनके वचन भी 'वेणुगीत' बन गये। एक तोता, जो कि भगवान् श्रीशुक ही थे, कहीं अन्तर्हित होकर गोपियोंके वचन सुनता रहा और शुकस्वभावके अनुसार परीक्षित् महाराजके सामने ज्यों-का-त्यों बोल गया। अतः इस शुकके वचन भी 'वेणुगीत' बने। कदाचित् उनके शब्द भी 'वेणुगीत' बन जायँगे, जो उस वेणुगीतके सम्बन्धमें कुछ बोलते हैं, कौन जाने ! श्रीकृष्णने मुरली बजायी गोपियोंको अपने पास बुलानेके लिये। उस वेणुगीतको गोपियोंने वेणुगीतकी तरह गाया। गोप-बालिकाओंका वेणुगीत सुनकर श्रीकृष्ण स्वयं गोपियोंकी ओर आकृष्ट हुए। मेरा

---

* श्री'श्रीकृष्णप्रेमीजी' महाराज मद्रास राज्यके दक्षिण आर्काट जिलेके तिरुकोयिलूरके समीपवर्ती 'परणूर्' नामक ग्रामके निवासी हैं। आप युगलकिशोर श्रीराधाकृष्णके परम प्रेमी हैं। आपके अष्टक मणिमाला, मुकुन्दस्तोत्रमाला, माधुर्यलहरी, भगवन्नामसिद्धान्तचन्द्रिका, राधिकाविलास, भक्तवंशावलि, प्रेमिक-गीता, श्रीकृष्णभक्तिरसोदय आदि श्लोकरूप ग्रन्थ एवं गोविन्दशतक, राधिकाशतक, युगलशतक, राघवशतक, नित्योत्सवपद्धति, हरिकथामृत आदि कीर्तनरूप ग्रन्थ बड़ी पुण्यवती रचनाएँ हैं। इनमें श्रीकृष्ण-प्रेमका रस छलका पड़ता है। यहाँ उनके 'वेणुगीतका' अनुवाद दिया जा रहा है।

—सम्पादक

विचार है कि गोपियोंका यह वेणुगीत श्रीकृष्णके वेणुगीतसे कहीं बढ़कर है; क्योंकि उनके इस वेणुगीतको सुनकर स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण उनके पास दौड़े चले आते हैं।

श्रीशुक उवाच—

इत्थं शरत्स्वच्छजलं पद्माकरसुगन्धिना।
न्यविशद् वायुना वातं सगोगोपालकोऽच्युतः॥
(श्रीमद्भा० १०।२१।१)

भगवान् श्रीशुक बोले-शरद्‌ऋतुके कारण वन बड़ा सुन्दर हो रहा था और यमुनाजीका जल निर्मल था। सरोवरोंमें खिले हुए कमलोंकी सुगन्धसे सनी मन्द-मन्द वायु बह रही थी। गायोंको तथा गोप-बालकोंको साथ लेकर श्रीकृष्णने वनमें प्रवेश किया।

नाना प्रकारके बहुत ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंसे सुशोभित है वृन्दावन। वहाँ यमुनाजी भगवत्प्रेमप्रवाहके समान बह रही हैं। कहीं-कहीं जल-प्रवाहके रुक जानेसे वैसे ही कई झीलें बन गयी हैं, जैसे श्रीकृष्णका प्रेम-प्रवाह कहीं-कहीं कुछ महात्माओंके पास रुककर वहीं मँडराता-सरसाता रहता है। शरद्‌ऋतुके कारण यमुना-सलिल स्वच्छ है और उसमें बहुत-से कमल विकसित हैं। कमलोंकी सुगन्धसे जल भी सुगन्धित हो रहा है। जलसे मिलकर कमल-गन्धको ग्रहणकर शीतल मन्द मारुत बह रहा है। ऐसे समय रसिकवर गोपाल वहाँ पधारे। वे एक ऐसे रसज्ञ हैं, जो वृन्दावनके लावण्यके स्वयं रसिक हैं और दूसरोंको भी रसिक बनाते रहते हैं।

कुसुमितवनराजिशुष्मिभृङ्ग-
द्विजकुलघुष्टसरस्सरिन्महीध्रम्।
मधुपतिरवगाह्य चारयन् गाः
सहपशुपालबलश्चुकूज वेणुम्॥
(श्रीमद्भा० १०।२१।२)

वृन्दावनमें सभी वृक्ष और लताएँ प्रफुल्लित पुष्पोंसे शोभायमान हैं। एक ओर मतवाले मधुप गुंजार कर रहे हैं, तो दूसरी ओर झुंड-के-झुंड पक्षियोंका कलरव हो रहा है। वनके सरोवर, नदी, पर्वत—सब-के-सब इन शब्दोंसे मुखरित हैं। मधुपति श्रीकृष्णने बलरामजी तथा ग्वालबालोंके साथ इस मनोहर वनमें गायें चराते हुए प्रवेश करके अपनी मुरलीपर मधुर तान छेड़ी।

वृक्ष और गुल्म अचेतन-से हैं। परंतु कितना निःस्वार्थ है उनका स्वभाव! इस जगत्‌में पुष्प ही सर्वश्रेष्ठ हैं। इस सर्वश्रेष्ठ सम्पत्तिको छिपाकर अपने पास ही रखना नहीं जानते—यहाँके ये पेड़-पौधे। अपने विकसित पुष्पोंकी सुगन्धको चारों ओर दूर-दूरतक फैला देते हैं, मानो (सुगन्ध-दूत भेजकर वे) सभीको बुलाते हैं—अपनी श्रेष्ठ सम्पत्ति पुष्पोंको तोड़कर ले जानेके लिये। (यों लुटाते हैं ये प्रेमी अपना धन।) श्रीकृष्णने इनका यह स्वार्थहीन प्रेम देखा और इन्हें अपने वृन्दावनमें एक स्थान दे दिया। पहले ही वे हृष्ट थे, अब तो उनके आनन्दकी बात कोई क्या कहे। ये सोचते हैं श्रीकृष्णके ही लिये हमारा जन्म हुआ है। यह विचार सदा उनके मनमें रहता है और वे सदा हँसते रहते हैं। सारे वृन्दावनमें विविध वर्णोंसे युक्त असंख्य पुष्प विकसित हो उठे हैं। उनकी सुगन्ध वृन्दावन-भरमें फैलकर पथिकोंको मोहित करती रहती है।

ये सभी पुष्प श्रीकृष्णके लिये ही विकसित हैं। काले-काले मधुकर इनकी यह श्रीकृष्ण-रति देखकर मुग्ध हो जाते और वे मधुर गुंजार करते हुए उड़-उड़कर उन पुष्पोंके पास चले आते हैं। पुष्प हर्षके साथ उनका स्वागत करते हुए कहते हैं—'क्या तुम हमारे श्रीकृष्णके लिये मधु लेने आये हो? आओ, आओ, मधु ले जाओ' मधुकर पधारे और पुष्पों पर बैठे। इच्छानुसार भरपूर मधु लेकर वे उड़े। इस आनन्दके साथ गुंजार करते उड़ चले कि हम श्रीकृष्णके लिये मधु ले जाते हैं। कोकिल-समूहने मधुकरोंकी यह श्रीकृष्ण-रति देखी। उनके गुंजारको आधार-श्रुति बनाकर वे कूजने लगे। कोकिलोंका यह श्रीकृष्ण-भजन देखा मयूर-समूहने। वे जोड़ी बना-बनाकर नाचने लगे। वहाँकी नदियाँ, सरोवर और पर्वत—जो रसिक थे—यह दृश्य देखकर 'वाह' 'वाह' करने लगे।

इतनेमें दूरसे गायें आती दिखायी दीं। तरह-तरहकी गायें झुंड-की-झुंड आती हैं। उनके बीचमें गोप-बालक हाथोंमें छड़ी लिये हर्षसे नाचते चलते हैं। उन सबके मध्यमें एक श्यामसुन्दर बालक रहता है। वह है नन्दगोपका लाड़ला लाला। उसे देखकर एक वृद्ध सज्जन पूछते हैं—'अरे लाला, क्या नाम है तेरा?' श्रीकृष्ण तो स्वभावसे ही बड़े नटखट हैं। वे सीधी तौरपर नहीं कहेंगे 'मैं कन्हैया हूँ।' वे भुलावा देकर उत्तर देते हैं—'बाबा! मेरा नाम है—मधुपति।' वृद्ध फिर पूछते हैं—'अरे लाला! इस मधुपतिका अर्थ क्या है?' 'अच्छा, अब

बतलाता हूँ'—यों कहकर श्रीकृष्णने मधुर मुरलीको अधर-बिम्बसे लगाया और एक विश्वमोहनी तान छेड़कर साभिमान खड़े देखने लगे। बेचारे वृद्ध बोले—'लाला! मैं तो कुछ नहीं समझा।' तब झट बलरामने कहा—'दादा! मधुका अर्थ है—माधुर्य। यह कहता है कि मैं उसका पति हूँ, इसलिये मेरा नाम मधुपति है।' तब बूढ़ेने कहा—'हाँ, ठीक है—पर यह तो स्वयं ही मधुर है; इसकी गति मधुर है, इसका वेश मधुर है, इसका गीत मधुर है, इसका विहार मधुर है तथा इसकी दृष्टि मधुर है। ये बालक जो इसके पीछे चलते हैं, वे भी मधुर हैं। इस प्रकार इससे सम्बन्ध रखनेवाले सभी मधुर हैं। अतएव यह इसका नाम मधुपति है।' यों कहते हुए वृद्ध सज्जन चले गये। वे तो गये, परंतु श्रीकृष्णने तो मुरली बजाना बंद नहीं किया।

> तद् व्रजस्त्रिय आश्रुत्य वेणुगीतं स्मरोदयम्।
> काश्चित् परोक्षं कृष्णस्य स्वसखीभ्योऽन्ववर्णयन्॥
>
> (श्रीमद्भा० १०। २१। ३)

वृन्दावनकी गोपबालिकाओंने दूरसे श्रीकृष्णकी मुरली-ध्वनि सुनी, जो उनके हृदयमें मदनमोहनके प्रति प्रेमभावको—उनसे मिलनकी आकाङ्क्षाको उत्पन्न करनेवाली थी। (उसको सुनकर) वे एकान्तमें अपनी सहेलियोंसे श्रीकृष्णके रूप-गुण तथा मुरलीमाधुरीका वर्णन करने लगीं।

श्रीकृष्णने मुरली बजायी। मोहनका मुरली-गान वायुके साथ प्रवाहित होकर गोकुलमें विद्यमान गोप-बालिकाओंके कानोंमें पड़ा। सुनते ही वे स्तब्ध हो गयीं। मन गृहकृत्यमें लगता ही नहीं। 'श्याम इस प्रकार मुरली बजायेंगे तो हम घरमें काम कैसे करेंगी?' यों कहती हुई वे वीथीकी ओर निकल पड़ीं। यों करनेवाली एक-दो गोपियाँ होतीं तो गाँववाले उनकी कुछ टीका-टिप्पणी भी करते; परंतु यहाँ तो श्रीकृष्णके द्वारा अपहृतचित्त सभी गोपबालाओंकी यही दशा हो गयी। फिर कौन किसकी निन्दा-प्रशंसा करे? कोई आकर उनसे पूछता है—'अरी मुन्नी! तू यह क्या करती है? अभी तो छोटी लड़की है! घरके अंदर न रहकर यहाँ रास्तेमें आकर क्या करती है?' तो वे वाचाल बालिकाएँ मुँहतोड़ जवाब देती हैं—'आप यदि हमारे-जैसी बालिका होते और श्रीकृष्ण मुरली बजाते, तब आपलोगोंको स्वयं विदित हो जाता कि हम घर छोड़कर क्यों बाहर निकल आयी हैं।'

वे बूढ़े, यह जानकर कि ये हमारी बात नहीं मानेंगी और इनको कहनेमें कोई लाभ नहीं, उनकी ओर ध्यान न देकर उपेक्षाके साथ रह जाते हैं। तब ये बालिकाएँ सोचती हैं कि 'यह भी हमारे श्रीकृष्णकी ही कृपा है।' और घर-के सब काम ज्यों-के-त्यों छोड़कर एकत्र हो तरह-तरहकी बातें करती हैं। उनका एक-एक शब्द मदनमोहन श्यामसुन्दर-की मधुर स्मृति उत्पन्न कर देता है। सहेलियाँ सब-की-सब मिलकर अपने प्रियतमका गुण-गान और उनकी प्रशंसा करनेमें सब कुछ भूल जाती हैं। समयका कोई पता ही नहीं रहता। इनको न तो भोजनकी आवश्यकता होती है, न निद्राकी। इन गोप-बालिकाओंको तो चाहिये एकमात्र श्रीकृष्ण और वे मिल जाते हैं इन्हें पर्याप्त मात्रामें।

वेणुगीत—२

श्रीगोपियाँ हैं—निष्कपट परिशुद्ध श्रीकृष्णप्रेमकी विविध मूर्तियाँ। गोपियाँ वे नदियाँ हैं, जिनके तट श्रीकृष्ण-प्रेमके प्रवाहसे अस्त-व्यस्त हो गये हैं। जैसे नदीके किनारे झोपड़ियाँ बनाकर कुछ लोग रहते हों और जल-प्रवाहके कारण तटके टूट जानेसे वे कुटियाँ छिन्न-भिन्न होकर उस प्रवाहमें बहने लगें, वैसे ही गोपीरूप नदियोंमें जब प्रेमका प्रवाह बढ़ा, तब उनमें स्थित सारे धर्म उन्मूलित होकर श्रीकृष्ण-प्रेमभक्तिमें तैरने लगे। अतः सभी गोपस्त्रियाँ अपने कुटुम्बके सारे काम और समस्त धर्म छोड़कर 'कृष्ण-कृष्ण' पुकारती हुई गोकुलमें इधर-उधर घूमने लगीं। गोपियोंका मनोभाव इतना ऊँचा है कि कोई भी कवि अपने सामर्थ्यसे लोगोंमें उसका वर्णन नहीं कर सकता। वह भाव है—प्रेमाभक्ति, जिसका स्वरूप अनिर्वचनीय है। संसारको तथा धर्मको भूल जाना ही प्रेमकी उच्च दशा है। उस दशाकी परम आदर्श-रूपा हैं ये गोपियाँ। यथार्थतः गोपियाँ श्रीकृष्णप्रेमसे उन्मत्त हैं और अपनी आत्मा एवं आत्मीय—सबको श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें समर्पण कर चुकी हैं। सभी गोपियाँ अपनेको भूलकर गान तथा नृत्य—नाट्य करती रहती हैं। एक गोपी गाती है और दूसरी नाचती है। एक रोती है और एक हँसती है। एक गोपी दौड़ती है और दूसरी स्तब्ध है, तो तीसरी अपने-आप कुछ गुनगुनाती रहती है। एक गोपी वीथीमें पड़कर धूलमें लोट रही है तो दूसरी मूर्छित होकर निश्चेष्ट पड़ी है। इस प्रकार स्थान-स्थानपर गोपियाँ विविध प्रेम-तरङ्गोंमें तरङ्गायित हैं। एक गोपी

यमुनाजीसे जल लाने जाती है तो यमुनाजलमें श्यामसुन्दरका वर्ण देखकर वहीं खड़ी रह जाती है, घर आती ही नहीं। एक फूल तोड़ने चलती है तो वहाँ उपवनके विकसित पुष्पोंमें श्रीकृष्णका मन्द-मृदुहास्य देखकर वहीं ठहर जाती है। घरके काम-काजमें तत्पर एक गोपी घरके स्तम्भका आलिङ्गन करके केशव, माधव, गोविन्द—पुकार उठती है। यह है इन गोपरमणियोंकी स्थिति, जो श्रीकृष्णके मधुर लीला-चिन्तनमें निमग्न होकर जगत्को, अपनी आत्मा तथा लोकमर्यादाको—सभीको भूल गयी हैं।

प्रातःकाल श्रीकृष्ण गायोंको लेकर गोकुलसे निकलते हैं, परंतु गोपियोंके हृदयसे तो नहीं निकल सकते। उनके ध्यान-चिन्तन-गुणगानमें ही ये गोप-बालिकाएँ सारा दिन बिताती हैं। श्रीकृष्ण दूर चले गये। वे अब नयनोंसे अन्तर्हित हैं। तथापि उनकी मुरलीकी मधुरध्वनि हवामें तैरती आती है। इस ध्वनिको सुनते ही गोपियाँ अपनेको और घरके सारे कारबारको भूल जाती हैं। यह भी भूल जाती हैं कि गुरुजनोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन हो रहा है। जहाँ-तहाँ झुंड-की-झुंड गोपियाँ एकत्र होकर खड़ी हो जाती हैं और श्रीकृष्णके सम्बन्धमें मधुर वार्तालाप करने लगती हैं।

तद् वर्णयितुमारब्धाः स्मरन्त्यः कृष्णचेष्टितम्।
नाशकन् स्मरवेगेन विक्षिप्तमनसो नृप॥
(श्रीमद्भा० १०। २१। ४)

हे राजश्रेष्ठ! मुरली-ध्वनिसे उन्हें श्रीकृष्णकी मधुर-मधुर लीलाओंका स्मरण हो आया। उन्होंने उसके वर्णन करनेका आरम्भ तो किया, परंतु प्रेमविवश होनेके कारण उनका मन उनके अधिकारसे निकल गया। वे मन-ही-मन श्रीकृष्ण-के समीप पहुँच गयीं। वाणी रुक गयी। वे कुछ भी वर्णन नहीं कर सकीं।

गोपियोंके मनोंमें स्वभावतया श्रीकृष्ण-प्रेम उमड़ रहा था; और अब उनके सम्बन्धमें परस्पर सम्भाषण करनेसे उसमें विशाल बाढ़ आ गयी। जैसे वे आये हों, जैसे उन्हें देखा हो, जैसे उनका शब्द सुना हो, इसी प्रकार वे सब बोलने लगीं। उनका हृदय माधुर्यभावसे भर गया। वह माधुर्यरस इतना बढ़ा कि बाहर बहने लगा। श्रीकृष्णके माधुर्यसे उनके मन, वाणी, शरीर—तीनों सन गये। न तो वे सोच सकीं, न बोल सकीं। एक-दो वचन बोलीं, और फिर 'श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण' कहकर चुप रह गयीं। शरीर पुलकित हो गया, लंबी-लंबी साँसें चलने लगीं। शरीर काँपने लगा और नेत्रोंसे अश्रु-प्रवाह चलकर कपोलोंको सिक्त करता हुआ बहने लगा। वे परस्पर देखती हैं, परंतु बोल नहीं सकतीं। वे प्रेम-भक्तिकी रसधारामें फँस गयी हैं, परंतु प्रेमका बन्धन भी तो आनन्ददायक ही होता है न!

इस दयनीय स्थितिमें गोपियोंको छोड़कर गोविन्द चले गये वृन्दावनको। यहाँ यह प्रश्न मनमें उठ सकता है कि क्या गौएँ चरानेके लिये उनका वृन्दावन जाना आवश्यक है? क्या श्रीकृष्ण अपने कर-स्पर्शमात्रसे गायोंका पालन-पोषण नहीं कर सकते? हाँ, आवश्यक है! श्रीकृष्णके वृन्दावन जानेका सच्चा कारण यह है कि वहाँ भी बहुत-सी गोपियाँ उनकी प्रतीक्षा करती रहती हैं। परंतु कौन हैं ये गोपियाँ? विभिन्न पौधे, विविध लताएँ, विविध पशु तथा विविध पक्षी। इन्हींको सुख प्रदानके लिये श्रीकृष्ण वृन्दावन गये हैं।

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
बिभ्रद् वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै-
र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः॥
(श्रीमद्भा० १०। २१। ५)

(उन्होंने देखा—) नटवर-जैसा सुन्दर वेश बनाये श्रीकृष्ण वेणुके रन्ध्रोंको अधरामृतसे भरते हुए अपने दिव्य चरणोंसे उस सुखदायक वृन्दावनमें गोपबालकोंसहित प्रवेश कर रहे हैं, जो उनकी कीर्तिका गान कर रहा है। श्रीकृष्णके सिरपर मयूरपिच्छ (शोभायमान है), कानोंमें कर्णिकार (कनेर) के पीले-पीले पुष्प, कटिमें स्वर्णाभामय पीताम्बर और गलेमें (पाँच प्रकारके सुगन्धित पुष्पोंसे रचित) वैजयन्तीमाला है।

ज्यों ही श्रीकृष्णने वृन्दावनमें प्रवेश किया, वहाँकी प्रत्येक वस्तुने उनका सादर स्वागत-सत्कार किया। चम्पक, मन्दार, अशोक, पारिजात आदि पुष्प प्रदान करनेवाले वृक्ष, आम, कदली, कटहल, सुपारी, नारियल आदि फल देनेवाले वृक्ष एवं जुही, जाति, मालती, मल्लिका आदि पुष्पलताएँ—सब श्रेणीबद्ध होकर श्रीकृष्णका स्वागत कर रहे थे। शीतल छाया तथा सुगन्धित पुष्प देकर श्रीकृष्णके प्रति वे अपना प्रेम प्रकट कर रहे थे। कोयल, मयूर, शुक, चक्रवाक, राजहंस आदि पक्षिगण अपनी मधुर काकलीसे श्रीकृष्णका गुण-गान करके उनका स्वागत करने लगे। हिरन, शश, गज,

बाघ, सिंह आदि जंगली जानवर टकटकी लगाकर श्रीकृष्णकी ओर देखने लगे, मानो वे चित्रलिखित हों। एक ओर गम्भीर गोवर्धनगिरि और शान्त-प्रवाहा यमुनाजी एवं दूसरी ओर सुन्दर-सुन्दर कुञ्ज और छलाँग मारते चञ्चल बछड़े, शान्त गौएँ, मस्त वृषभ एवं समान-आचारी सखा-मित्रगण—सभी श्रीकृष्णका कौतूहल और आनन्द बढ़ा रहे थे।

कर-कमलमें मधुर मुरली लिये नूपुरकी झनकार करते हुए श्रीकृष्णने वृन्दावनमें प्रवेश किया। वृन्दावन एक सुन्दर रङ्गमञ्चके समान था और श्रीकृष्ण एक चतुर नटवरके समान। श्रीकृष्ण केवल नटवर मात्र ही नहीं हैं, रसिक-रत्न भी हैं। रसिकजन उनका रसानुभव करते हैं और वे भी उन रसिकोंका। रसिक क्या, विरसहृदयी भी यदि श्रीकृष्णको देख पाते हैं या उनके सम्बन्धमें कुछ सुन लेते या उनका स्मरण कर लेते हैं तब उनके हृदयमें भी रस उत्पन्न हो जाता है। जो श्रीकृष्णके संसर्गमें आते हैं, वे सब तो बड़े ही रसिक बन जाते हैं।

श्रीकृष्णका वह विश्वविमोहन रूप कितना सुन्दर है—

जलगर्भित मेघके समान नयनानन्ददायक नीलश्याम वर्ण, कटितटमें विद्युत्-वर्ण पीतपट, वक्षःस्थलपर लहराता मुक्ताहार और विलंवित वैजयन्तीमाला, हाथोंमें रत्नजटित कङ्कण, अँगुलियोंमें दीप्तिमयी अँगूठियाँ, पूर्णचन्द्रसे भी मनोहर दिव्य वदनेन्दु, प्रेमियोंके लिये सुखद चञ्चल कटाक्ष; कानोंमें मनोहर मकर-कुण्डल, प्रवाल-जैसे अधरपर खेलती हुई निर्हैतुक मधुर स्मिति-सुषमा; काली घुँघराली अलकावली; ललाटमें कस्तूरी-तिलक, सिरपर मोतियोंसे अलंकृत केश-जूट और उसपर नृत्य करता हुआ शिखिपिच्छ (मोरपंख), आननपर रसिकता एवं गतिमें उल्लास। इस मनोहर रूपके साथ वृन्दावनमें श्रीकृष्णने प्रवेश किया।

इसी मार्गसे कल सायंकाल श्रीकृष्ण गोकुल लौटे थे। वृन्दावनकी भूमिपर अङ्कित उनके चरण-कमलोंके चिह्न वैसे ही विद्यमान थे। श्रीकृष्णके पदचिह्नोंका रसास्वादन करना तो अक्रूर-जैसे कृष्णप्रेमी ही जानते हैं; परंतु रसिकवर श्रीकृष्ण स्वयं भी अपने पदचिह्नोंके सौन्दर्यका आस्वादन करते हैं। उन्होंने अपने एक सखासे प्रश्न किया—'देखो श्रीदाम! यह वृन्दावन कितना सुन्दर है। बताओ तो इसका क्या कारण है?' श्रीदामने उत्तर दिया—'तुम्हारे पद-चिह्न ही मनोहर चित्रके सदृश वृन्दावनकी शोभा बढ़ा रहे हैं।' यह सुनकर श्रीकृष्णको भी आनन्द हुआ।

अन्य गोप-बालक श्रीकृष्ण-चरित्रका गान करते हुए चल रहे हैं। क्या ये कवि हैं? परंतु क्या कवि ही गा सकते हैं? पक्षिगण भी तो मधुर गान करते हैं। पक्षियोंके गानको गीतके ढाँचेमें गाकर साधारण मनुष्य भी कविकी उपाधि पा लेते हैं। अस्तु, गोपबालक प्रेमविह्वल होकर श्रीकृष्णका गुण-गान करते हैं तथा नाच उठते हैं। उनका मधुर गीत सुनते-सुनते श्रीकृष्ण गम्भीर गतिसे चलकर उनके बीचमें आ पहुँचे। उन्होंने चारों ओर घूमकर वहाँके वृक्ष-लतादि रसिकोंको देखा, जो उनके नाट्यको देखनेकी उत्कट उत्कण्ठासे पूर्ण होकर उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। श्रीकृष्णने अपना सौन्दर्य तथा वात्सल्य दिखाकर सभीको आनन्दमय बनाया। सभी जीव प्रेम-विवश होकर उनके सामने आ खड़े हुए। श्रीकृष्णने प्रेमसे उनका आलिङ्गन किया और पुनः-पुनः उनके शरीरपर हाथ फेरते रहे। तत्पश्चात् मुरली लेकर उसे बिम्बाधरके सदृश अधरपर रक्खा और धीरे-धीरे अँगुलियोंके स्पर्शसे गानकी वर्षा करने लगे। वहाँके सभी जन्तु उस गानवर्षासे आनन्दाप्लावित थे। यह सोचकर कि गोकुलमें स्थित गोपियाँ भी इस गान-वर्षासे भींग गयी होंगी, वे प्रसन्न हुए।

(३)

श्रीकृष्णके मुरली-निनादसे वृक्ष-लता आदि पोषण प्राप्त करते हैं; उनकी मुरली ध्वनिसे ही गायों और बछड़ोंका अभिवर्धन होता है। उनका वेणुगान सुनकर कोकिलें कूक उठती हैं; मयूर नाचने लगते हैं और हिरन छलाँग भरने लगते हैं। वेणुनादका श्रवण करते ही ऋषिगण अपने नियमोंको भूल जाते हैं। गौएँ घास चरना छोड़ देती हैं। बछड़े मुँहका दूध मुँहमें ही रखकर चित्र-जैसे खड़े रह जाते हैं। हिरन मुँहमें घास लिये अपने सिर उठाकर कान खड़े किये हुए श्रीकृष्णके मुरली-नादको सुनने लगते हैं। पथिकजन अपना गन्तव्य स्थान भूलकर वहीं स्तब्ध होकर बैठ जाते हैं।

श्रीकृष्णने मुरली बजाते हुए वृन्दावनमें प्रवेश किया और वहाँ एक बड़े वटवृक्षपर चढ़कर बैठ गये। उनके दोनों पैर शाखाके दोनों ओर लटक रहे थे। पैरोंमें सोनेके नूपुर प्रकाशमान थे। एक पैरपर दूसरेको रखकर धीरे-धीरे ताल

दे रहे थे श्रीकृष्ण। उनका अनुसरण करके नूपुर बज रहे थे। ऊपरका दुपट्टा, घुँघराले केश, सिरका मोरपंख—सब हवामें हिल रहे थे। उनके लोचनोंकी मोहनी दृष्टि गोकुलकी वीथियोंकी ओर चली। उसने वहाँ प्रति गृहके सामने वीथीपर खड़ी गोप-बालिकाओंको देखा, जो आपसमें श्रीकृष्णकी मधुर चर्चा कर रही थीं। कमरसे बाँसुरी निकाली और अपने सुन्दर अधरपर रख मधुर स्वरसे बजाने लगे।

इति वेणुरवं राजन् सर्वभूतमनोहरम्।
श्रुत्वा व्रजस्त्रियः सर्वा वर्णयन्त्योऽभिरेभिरे॥
(श्रीमद्भा० १०। २१। ६)

'नरश्रेष्ठ! व्रजकी सब रमणियाँ इस प्रकार समस्त जड-चेतन प्राणीमात्रका मन हरण करनेवाले वेणुकी मधुर ध्वनिको सुनकर उसकी माधुरीका वर्णन करती हुई आनन्दित हो उठीं।'

श्रीकृष्ण रातभर गोकुलमें रहे और अभी-अभी प्रातःकाल गायोंको लेकर निकले हैं। गोपियोंको तो ऐसा लगता है मानो युग ही बीत गया हो। उन रसिक लालसे एक क्षण बिछुड़नेपर भी सारा जगत् निस्सार दीखता है। गोपियाँ उन्हींके सम्बन्धमें बातें कर रही थीं। समय बीत जानेका ज्ञान उन्हें न था। वृन्दावनकी ओरसे सुगन्धित वायु आ रही है। उसके साथ नन्दलालकी मुरलीकी मधुर मादक ध्वनि भी आती है। गोपियोंने उसे सुना तो उनके हृदयमें स्थित कृष्णप्रेम-रस बाँध तोड़कर बहने लगा। उस प्रेमके वश होकर वे परमानन्दित हुईं। आनन्दसे कौतूहल हुआ और कौतूहलके कारण वे परस्पर आलिङ्गन करके श्रीकृष्णका गुणगान करने लगीं।

एक गोपीने कहा—'न जाने यह यशोदाका लाल यहीं ठहरकर हमारे साथ विहरण करना छोड़कर क्यों गायें चराने गया?' दूसरी गोपी अनुकम्पाके साथ बोली—'वह तो अभी नन्हा बच्चा है। धूपमें जानेसे क्या उसका मुँह मुरझा नहीं जायगा? इधर-उधर घूमनेसे बेचारेके पेटमें भूख नहीं लगेगी? जंगलके काँटोंसे तथा पत्थरोंसे उसके पैर व्यथित नहीं होंगे? देखो, इस यशोदाने कैसे अपने प्यारे लालाको गाय चराने जंगल भेज दिया?'

दूसरी बोल उठी—'सखि! क्या वह हमारा ही है! क्या तुम सोचती हो कि हम ही उसपर प्रेम करती हैं और हममें ही उसके प्रति श्रद्धा और आदर है! समस्त चराचर उससे प्रेम करते हैं। लता और कुञ्ज, पेड़ और पौधे, पशु और पक्षी, नदी और तड़ाग, देव तथा गन्धर्व, स्त्री और पुरुष—सभी उसके प्रेमी हैं और निर्भय उससे मिलकर विहरण कर रहे हैं। उसको अपने पास बुलाकर उसका आदर-सत्कार भी करते हैं। कोई वृन्दावन जाय तभी तो इस महत्त्वका अनुभव कर सकता है।'

यों बोलते-बोलते गोपियाँ श्रीकृष्णके प्रेम तथा सौन्दर्यसे विमोहित हो गयीं। उनकी हृदय-वीणा प्रेम-तन्त्रीसे सन्नद्ध होकर श्रुति-शुद्धरूपसे बजने लगी। श्रीकृष्णका वेणुगान उससे मिल गया। सहृदयताके साथ गोपियाँ गाने लगीं।

गोप्य ऊचुः—

अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः
सख्यः पशूननुविवेशयतोर्वयस्यैः।
वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणु जुष्टं
यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम्॥
(श्रीमद्भा० १०। २१। ७)

'गोपियाँ परस्पर बातचीत करने लगीं—प्यारी सखियो! जो लोग श्रीकृष्ण और बलदेवके सुन्दर मुखकमलके सौन्दर्यका प्रेमके साथ दर्शन करते हैं, उन्होंने ही अपने नेत्रोंका फल पाया है, उससे श्रेष्ठ दूसरा कोई फल हमें ज्ञात नहीं, यही हमारा सिद्धान्त है—जो श्रीकृष्ण और बलराम अपने मित्र ग्वाल-बालोंके साथ गायोंको हाँककर वनमें प्रवेश करते हैं, जिन्होंने अधरोंपर मुरली धारण कर रक्खी है और जो प्रेमभरे कटाक्षसे हमारी ओर देख रहे हैं और जिनके मुख-कमलकी माधुरीका हम पान कर रही हैं।'

नयन-प्राप्तिका फल श्रीकृष्णके दर्शन करना ही है। वे लोचन, जो श्रीकृष्णके दर्शन नहीं कर पाते, क्या लोचन कहाने योग्य हैं? उसमें भी श्रीकृष्णकी उस समयकी शोभाको देखना चाहिये, जब प्रातःकाल वे गायें लेकर चलते हैं। कह तो दिया कि श्रीकृष्णकी स्वरूप-शोभा ही देखनी चाहिये। किसीके हजारों लोचन रहें, तब भी क्या वह पूर्णतया उसे देख सकता है! श्रीकृष्ण सबेरे उठकर माता यशोदाके द्वारा अपनेको अलंकृत करायेंगे। पैरोंमें झनकार करते नूपुर, कटिपर बिजली-सा चमकता पीतपट और स्वर्णमयी सुन्दर मेखला, उरपर मोतियोंका हार, करोंमें कङ्कण, गलेमें कण्ठिका, कानोंमें मकरकुण्डल, सिरपर केशालंकार—ये हैं

श्रीकृष्णके स्पृहणीय अलंकार; माता यशोदाजी उन्हें उनका जी-चाहा आभूषण पहनाती हैं। तदनन्तर वे मक्खन, मिश्री, मिष्टान्न आदि-आदि भरपेट खाते हैं। कुछ दही-भात लेकर उसे एक कपड़ेमें बाँधकर एक छड़ीमें उसे टाँगकर छड़ी कंधेपर रख लेते हैं। फिर, हाथमें बाँसुरी लेकर घरसे निकलते हैं। माता यशोदा उनका वियोग न सह सकनेके कारण द्वारतक उनके साथ आती हैं और कहती हैं—'बेटा! अँधेरा होनेके पहले ही घर लौट आना। बुरे लड़कोंके संगमें पड़कर नटखट मत बनना। जंगलमें काँटोंके और पत्थरके ऊपर होकर मत दौड़ना। यमुनाजीके गहरे पानीमें मत कूदना। धूपमें न घूमना और मरकनी दुष्ट गायोंके पास न जाना।' श्रीकृष्ण उत्तर देते हैं—'माँ! मैं बड़ी सावधानीसे जाऊँगा और सावधानीसे ही लौटूँगा। मैं नटखट बालक तो हूँ ही नहीं।'

यों कहकर ज्यों ही श्रीकृष्ण वीथीमें आते हैं, त्यों ही हजारों गोप-बालिकाएँ उनके सौन्दर्यामृतका पान करनेकी इच्छासे उनकी राह देखती द्वारोंपर आ जाती हैं। अपने मन्दहाससे उनके मनका अपहरण करते हुए मुरली अधरपर रखकर एक गीत जान-बूझकर गाते हुए चलते हैं। मन्त्र-मुग्ध-सी सब गोपियाँ गीतके वशमें होकर उनके पीछे-पीछे चलने लगती हैं। अपनी कनखियोंसे उनको देखकर उनके पसंदकी राग अलापते वे आगे बढ़ते हैं। गोपियाँ भी उस रसका अनुभव करके सहेलियोंसे उसकी चर्चा करती हुई चलती हैं। उसके कटाक्षोंसे विकल गोपियाँ हाथ मलती लंबी साँसें लेती हैं। इसे देखकर श्रीकृष्णको बड़ा आनन्द होता है। परंतु गोपियोंको घरमें कितने ही काम करने हैं। उनमें मन तो लगता नहीं। इच्छा होती है कि सबको छोड़कर श्रीकृष्णके पीछे-पीछे ही चल दें। परंतु भय लगता है कि घरवाले, पता नहीं, क्या कहेंगे, करेंगे। बेचारी गोपियाँ क्या कर सकती हैं? श्रीकृष्णको गायोंके पीछे-पीछे चलने देकर वे विवश हो घर लौटती हैं। यों वे शरीरसे तो लौट आती हैं, परंतु उनके मन कहाँ लौटते हैं। वे श्रीकृष्णके दर्शनके लिये तरसती रहती हैं। उनके रूप-सौन्दर्यको जैसा देखा है, वैसा ही परस्पर वर्णन करके वे सुख-लाभ करती हैं। परंतु इससे तृप्ति कहाँ होती है। अपने-अपने हृदयमें उसको रखकर वे एक दूसरीका आलिङ्गन करती हैं। पर सब लौटती भी कहाँ हैं। घरमें काम है, यह कहकर वे श्रीकृष्णको भेजकर लौटीं, पर घर नहीं आयीं। जहाँ-तहाँ खड़ी होकर वार्तालाप करने लगीं। इनकी सासें भी, जो इन्हें बुलाने आयीं, वहीं रुककर उन्हींके साथ बातचीत करने लगीं। कृष्ण-सम्बन्धी बातें किसे अच्छी नहीं लगतीं? उनसे सम्बद्ध सभी विषय मधुर-ही-मधुर हैं—मधुसे भी मधुर हैं वे। जितना भी स्वाद ले कोई, वह तृप्त नहीं होगा। वे हैं अपर्याप्तामृत। वह एक ऐसा मधु है, जो बुद्धिको भी विक्षुब्ध कर देता है। उस मधुके पति भी वही हैं। इस दशामें उनके सम्बन्धमें सोचो या बात करो, गाओ या सुनो, तब समयका ज्ञान ही नहीं रहता। जब विषय ऐसा है, तब उन गोपियोंके सम्बन्धमें हम क्या कहें, जो उससे प्रेम करके, प्रेमसे उन्मत्त होकर सदा स्तब्ध-सी रहती हैं। (क्रमशः)

मुरलीधरकी मुरली

गोविंद करत मुरली गान।
अधर कर धरि स्यामसुंदर सप्त सुर बंधान॥
विमोहीं ब्रजनारि, पसु-पंखी सुनै दै कान।
चर स्थिर रह्यौ, फिरै अचल, सबकी भई गति आन॥
तजि समाधि जु मुनि रहे, सब थके ब्योम विमान।
'कुँभनदास' सुजान गिरिधर रची अद्‌भुत ठान॥

—भक्त कुम्भनदासजी

संत श्रीज्ञानेश्वरका गीतातत्त्वविवेचन

(लेखक—श्रीयुक्त आत्माराम शास्त्री, साहित्यसुधाकर, सा० दर्शनाचार्य)

श्रीमद्भगवद्गीताका केवल भारतीय वाङ्मयमें ही नहीं, समस्त विश्वके वाङ्मयमें महत्त्वपूर्ण स्थान है। वह इसलिये कि गीतामें नीति एवं समाज-शास्त्रके द्वारा अध्यात्म-जैसे सूक्ष्म एवं गम्भीर विषयको जिस सरलतासे समझाया गया है, वैसा प्रायः अन्यत्र किसी ग्रन्थमें नहीं पाया जाता।

गीतामें जो नीतिविचार, आध्यात्मिक तत्त्व एवं अबाधित सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये हैं, वे केवल अर्जुनके लिये या तात्कालिक समाजके लिये ही उपादेय नहीं, अपितु वे सार्वदेशिक, सार्वकालिक एवं सार्वजनीन हैं।

उसमें ऐहिक एवं पारलौकिक अभ्युदयके लिये अध्यात्मशास्त्रमें वर्णित कर्म, उपासना, ध्यान, योग एवं ज्ञानादि सभी विषयोंका समन्वय-पद्धतिसे विश्लेषण एवं निबन्धन किया गया है।

गीताकी इस विशेषताके कारण ही विश्वके प्रायः सभी प्राचीन एवं अर्वाचीन ऋषि-मुनियोंने, धर्माचार्योंने, राष्ट्र-नेताओंने एवं समाजसेवकोंने गीताका मधुर रसपान करते हुए अपने जीवनको सफल माना है, सफल बनाया है।

संस्कृतमें होनेपर भी भाषाकी दृष्टिसे गीता-जैसा सरल एवं सुगम तत्त्वज्ञानका ग्रन्थ संस्कृत वाङ्मयमें भी दुर्लभ है। इतनी सरल एवं सुगम भाषा होनेपर भी उसमें प्रतिपादित सिद्धान्त गूढाभिप्रायसे भरे हुए हैं। अतः सभी आचार्योंने गीतापर संस्कृतमें भाष्य लिखकर उन अभिप्रायोंकी ग्रन्थियोंको खोलकर अपने-अपने सिद्धान्तकी पुष्टि करते हुए गीताकी सर्वोपयुक्तता स्वीकार की है।

गीतापर भारतीय एवं विदेशीय भाषाओंमें जो अनेक टीकाएँ लिखी गयी हैं, उनमें महाराष्ट्रके सुप्रसिद्ध संत श्रीज्ञानेश्वर महाराजजीद्वारा लिखित 'ज्ञानेश्वरी' टीका सुविख्यात मानी जाती है। वह अपनी सरलता एवं सुगमताके कारण छः सौ पचास वर्षोंसे महाराष्ट्रीय जनमानसका तथा अन्य पाठकोंका कण्ठाभरण बन गयी है। जो भी एक बार उसका रसपान कर लेता है; वह उसे अपना ही लेता है; ऐसी मिठास उसमें भरी हुई है।

श्रीज्ञानेश्वरजीने अपनी टीकामें गीताकी महत्ता एवं उपादेयताको, अध्यायों तथा श्लोकोंकी विशेषताको स्पष्ट करते हुए उनमें प्रतिपादित गीतातत्त्वको व्यावहारिक परिभाषामें परिवद्धकर उसे बोधगम्य बनाया है।

गीता क्या है ?

श्रीज्ञानेश्वरजी अपनी पैनी दृष्टिसे गीताको परखकर अनेक सरल एवं सुप्रसिद्ध उपमानोंद्वारा उसके स्वरूपका निर्धारण करते हुए 'गीता क्या है'—इस प्रश्नके उत्तरमें लिखते हैं—

'गीता सकल आश्चर्योंका जन्मस्थान, समस्त सुखोंका आदिकारण, सभी सिद्धान्तोंकी महानिधि, नवरसोंसे परिपूर्ण अमृतसिन्धु, सभी धर्मोंका मूल, विवेकतरुका अभिनव उद्यान एवं अभिनव वाग्विलासिनी चातुर्यार्थ-कलाकामिनी, विश्वमोहिनी शारदाका लावण्यरत्नभाण्डागार है। उपनिषद् एवं महाभारतरूपी कमलका पराग, ज्ञानामृतकी जाह्नवी, चन्द्रमाकी सतरहवीं कला, विचाररूपी समुद्रसे निकली हुई नयी लक्ष्मी, भगवान्‌की उन्मेषलता सात सौ श्लोकरूपी मन्त्रोंसे प्रतिपाद्य मोहरूप महिषासुरको मुक्ति देनेवाली भगवती दुर्गा हैं, जो तीनों लोकोंमें वन्द्य हैं और जिनकी ब्रह्मादि प्रशंसा करते हैं तथा आदरके साथ सनकादि जिनकी सेवा करते हैं।'

गीता शब्दब्रह्मरूपी समुद्रसे व्यास-बुद्धिके द्वारा निकाला गया नवनीत है, जो ज्ञानरूप अग्निके सम्पर्कसे विवेकके द्वारा तपाया जाकर गीतापद्यरूप आमोदवाले परिपक्व घृतरूपसे तैयार हुआ है। एक ऐसा रस है, जो क्षीरसमुद्रसे निकाला गया होनेसे तथा मधुर होनेसे 'अमृत' नामसे कहा जाता है; पर वस्तुतः वह अमृतका आभास ही है; क्योंकि वह सभीके लिये प्राप्य एवं सेव्य नहीं है। पर गीता तो साक्षात् 'परमामृत' है, जो क्षीरसागरसे मन्दराचलकी सहायतासे निकाला हुआ नहीं, अपितु स्वाभाविक अनादि परमामृत है, जो न पिघलता है न बहता है; पर संसारके सभी प्राणियोंके लिये प्राप्य एवं सेव्य है, जिसके श्रवणमात्रसे जन्म-मरणरूप संसारकी निवृत्ति एवं परमानन्दरूप सुखकी प्राप्ति होती है।

नया वेद

मनुष्यमात्रके हित एवं अहितको दिखानेवाला ज्ञानदीप वेद ही है, पर उसके-जैसा कृपण भी दूसरा कोई नहीं है; क्योंकि उसने तीन वर्णोंको ही पढ़नेका अवसर प्रदान किया है, सहभागिनी स्त्रियोंका एवं संसारानल-संतप्त अन्य लोगोंका उसने अङ्गीकार नहीं किया है; अतः श्रीज्ञानेश्वरजी कहते हैं कि मानो अपनी इस कमीका अनुभव करके उसे दूर करनेके लिये तथा सभीके द्वारा सेव्य होनेके लिये वेद ही गीतारूपमें प्रकट होकर उत्तम-अधम, ऊँच-नीच—ऐसा भेद-भाव न करता हुआ, सभीको कैवल्यरसका समानरूपमें दानकर विमल कीर्तिको पा रहा है।

वेद भगवान्के निःश्वाससे (सहज लीलासे) प्रकट हुए हैं, पर गीता भगवान् श्रीकृष्णके श्रीमुखसे निकली हुई है। वेदमें जैसे कर्म, उपासना एवं ज्ञानकाण्ड हैं, वैसे गीतामें भी ये तीन ही काण्ड (प्रकरण) हैं। इसलिये ही गीता एक नया वेद है।

इस प्रकार विविध रूपोंमें गीताके स्वरूपका प्रतिपादन करके उन्होंने गीताके अध्यायोंका वैशिष्ट्य भी व्यावहारिक दृष्टान्तोंद्वारा प्रकाशित किया है।

गीताके अध्यायोंका वैशिष्ट्य

गुड़, चीनी तथा शक्कर आदि सभी वस्तुएँ इक्षु (गन्ना) के ही रससे बनायी जाती हैं, पर प्रत्येकका स्वाद एवं गुणधर्म भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है; वैसे अठारह ही अध्याय गीताके होनेपर भी प्रत्येककी अपनी निजी विशेषता है। जैसे उनमें कुछ अध्याय साध्यका सम्यक् प्रतिपादन करते हैं; कुछ साधनका विवेचन करते हैं और कुछ साध्य-साधनके समन्वयको स्पष्ट करते हैं, तो कुछ अपनी मौलिकता प्रकट करते हैं।

उदाहरण लीजिये, छठे अध्यायकी मौलिकताका दिग्दर्शन करते हुए श्रीज्ञानेश्वरजी कहते हैं कि छठा अध्याय क्षीर-समुद्रसे प्राप्त अमृतके समान गीतार्थका सार है, विवेक-रूप सिन्धुका यह 'पैलतीर' है, अनन्त योग-सम्पत्तिका भंडार, आदिमायाका विश्रान्तिस्थान है, जहाँ वेदवाणी भी कुण्ठित होती है।

नवम अध्यायकी विशेषताको दिखाते हुए वे लिखते हैं कि सभी वेदोंका सार महाभारतमें संगृहीत है, महाभारत-के सार-का-सार गीतामें निहित है और गीताके सात सौ श्लोकोंका सर्वस्व नवम अध्यायमें वर्णित है; क्योंकि उसमें आध्यात्मिक जीवनके लिये उपयुक्त राजविद्याका—पराविद्याका, भगवान्के ऐश्वर्य-योगका एवं भक्तिका वर्णन किया गया है, जो अनुपमेय है। श्रीराम-रावणके युद्धको राम-रावण-जैसा ही कहा जा सकता है, उसके लिये दूसरी उपमा नहीं दी जा सकती, वैसे ही नवम अध्यायमें भगवान्ने जो कुछ कहा है, वह नवम अध्यायके ही जैसा है।

श्रीराम रावण झुंझिनले कैसे। श्रीराम रावण जैसे
तैसे नवमी कृष्णाचे बोलणे। ते नवमीचियाचि ऐसे मी म्हणे॥

(ज्ञाने० अ० १० । ३८-३९)

इस प्रकार ग्यारहवें एवं अठारहवें अध्यायकी भी अपनी-अपनी मौलिक विशेषता है, जो मूलमें ही पठनीय है।

अध्याय एवं श्लोकोंका सम्बन्ध

इस प्रकार गीताके अध्यायों एवं श्लोकोंका अपना-अपना निजी वैशिष्ट्य होनेपर भी उनका परस्पर अटूट सम्बन्ध है, जैसे अनेक मोतियोंकी माला बननेपर भी उनकी कान्ति-शोभा अलग-अलग नहीं प्रतीत होती, पुष्प एवं पुष्पमालाकी सुगन्धकी गणना अलग-अलग नहीं की जा सकती, वह सबकी समान ही है। यमुनाजी और गङ्गाजी प्रवाहकी दृष्टिसे भिन्न-भिन्न प्रतीत होनेपर भी जलकी दृष्टिसे उनमें भिन्नता नहीं है, एक श्लोकके चार पाद होनेपर भी श्लोक एक ही है, वैसे ही संख्याकी दृष्टिसे गीताके अध्याय एवं श्लोकोंमें भेद प्रतीत होनेपर भी तत्त्वार्थकी दृष्टिसे वे परस्पर अभिन्न ही हैं—

तैसी सिनानी चारी पदे। श्लोक श्लोकावच्छेदे।
अध्याय अध्याय भेदे। गमे कीरं॥
परी प्रमेयाची उजरी। आन आन रूप न धरी॥

(ज्ञाने० अ० १८ । ५४-५५)

गीतामें त्रिवेणी-संगम

विवाहके प्रसङ्गमें वधू एवं वरके साथ अन्य लोगोंको (बरातियोंको) भी वस्त्र-अलंकारोंसे अलंकृत किया जाता है, वैसे ही गीतामें प्रमुख रसके साथ अन्य रसोंको भी स्थान मिला है। अतः रसकी दृष्टिसे गीता 'त्रिवेणी-संगम' है। त्रिवेणीसंगम प्रयागमें गङ्गाजी एवं यमुनाजी प्रकटरूपमें प्रवाहित होती हैं और सरस्वतीजी गुप्त रूपमें; वैसे ही गीतामें शान्त रस एवं अद्भुत रस स्पष्ट रूपमें प्रतीत होते हैं तथा अन्य रस सरस्वतीजीकी भाँति गुप्त रूपमें हैं। अतः यह रसोंका त्रिवेणी-संगम है—

जेथ शान्तिचिया घरा। अद्भूत आला आहे पाहुणेरा॥
आणि येराही रसां पातिकरा। जाहला मान॥
या लागी त्रिवेणी हे उचित। फावली बापा॥
(ज्ञाने० अ० ११। २-७)

गीताका तत्त्व

औषधके कटुपनमें अमृतके समान जो जीवनशक्ति होती है, वह दिखायी नहीं देती, पर गुणके द्वारा वह अनुभवमें आती है, वैसे ही गीतामें भगवान्‌के वचन ऊपरसे देखनेपर कहीं-कहीं उदास एवं क्लिष्ट प्रतीत होते हैं, पर परिणाममें वे हितकर होते हैं। स्वयं भगवान् श्रीशंकरजी पार्वतीजीसे कहते हैं—'हे देवि ! जैसे आपके सौन्दर्यका पार नहीं लगाया जा सकता, वैसे ही गीतातत्त्वका भी पार नहीं लगाया जा सकता, अर्थात् जैसे आपका सौन्दर्य उत्तरोत्तर वर्धमान होता है, वैसे ही गीतामें भी उत्तरोत्तर नये-नये तत्त्व एवं भाव परिलक्षित होते हैं—

तेथ हर म्हणे नेणिजे। देवि जैसेका स्वरूप तुझे।
तैसे हे नित्य नूतन देखिये। गीतातत्त्व॥
(ज्ञाने० अ० १। ७१)

गीताका सेवन कैसे करे ?

भारतीय मान्यता है कि आश्विन शुक्ल पूर्णिमा, जिसे 'शरत्पूर्णिमा' कहा जाता है, उस दिन चन्द्रमासे अमृत-कण प्रसृत होते हैं। उन्हें चकोरपक्षी एवं उनके बच्चे जिस कुशलतासे सेवन करते हैं, खिले हुए कमलसे पराग-कणोंको भ्रमर जिस तरीकेसे ग्रहण करता है, अपना स्थान न छोड़ते हुए कुमुदिनी जिस प्रकार चन्द्रमाका आलिङ्गन करती है, उस प्रकार गम्भीर एवं स्थिर अन्तःकरणसे गीतातत्त्वका सेवन करना चाहिये; क्योंकि वह अत्यन्त सूक्ष्म एवं गहन है—

जैसे—

शारदीचिये चन्द्रकळे। माजी अमृतकण कोवळे॥
ते वेंचिती मनें मवाळें। चकोर तरुगे॥
तिया परी श्रोता। अनुभवावी हे कथा॥
(ज्ञाने० अ० १। ५६-५७)

महर्षि व्यासजीका विश्वपर उपकार

वायुका उपभोग करनेके लिये चतुर लोग पंखेका निर्माण करते हैं, वैसे ही जो परब्रह्म शब्दोंसे अगोचर था, वह स्त्री-शूद्रादि सभी लोगोंको बोधगम्य करानेके लिये श्रीव्यासजीने गीताको अनुष्टुप् छन्दमें आबद्ध किया है। यदि स्वाति नक्षत्रका जल मोतीके रूपमें परिणत न होता तो वह स्त्रियोंके शरीरका आभूषण न बनता; यदि वाद्योंका आश्रयकर ध्वनि प्रस्फुटित न होती तो कानोंको उसका ज्ञान न होता; पक्वान्नोंमें मधुरता प्रकट न होती तो रसनाको उसका स्वाद न मिलता; यदि दर्पण न होता तो नेत्रोंको नेत्रका दर्शन न होता। वैसे ही जिस परमतत्त्वके विषयमें श्रुति—'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'—वाणीके द्वारा वह परमात्म-वस्तु नहीं जानी जा सकती, वाणी एवं मनकी भी गति वहाँ कुण्ठित होती है—यों कहती है, वह परमतत्त्व गीतामें यों श्लोकोंके रूपमें यदि साकार न होता तो सभीको उसकी प्राप्ति कैसे होती। अतएव श्रीकृष्णार्जुनके संवादको गीताग्रन्थका रूप देकर महर्षि व्यासजीने विश्वका महान् उपकार किया है—

आणि वाचा जे न पवे। ते हे श्लोक होते न बरवे॥
तरि काने मुखे फावे। ऐसे का होते॥
म्हणोनि श्रीव्यासाचा हा थोर। विश्वासी जाहला उपकार॥
जे श्रीकृष्ण उक्ति आकार। ग्रन्थाचा केला॥
(ज्ञाने० अ० १८। ७८। १७०७-८)

मित्र कौन ? शत्रु कौन ?

(लेखक—डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, विद्याभूषण, दर्शनकेसरी)

दो प्रकारके जीव

कुछ ऐसे जीव-जन्तु हैं, जिन्हें मनुष्यसे भय नहीं; वे मनुष्यके घरमें यों निर्द्वन्द्व विचरण करते हैं, मानो यह घर उन्हींका हो। न दुराव, न छिपाव। इनका जीवन जैसे एक खुली पुस्तक है। जीवनका एक-एक पृष्ठ, एक-एक अक्षर स्पष्ट नजर आ रहा है। इन्हें मनुष्यसे कोई भय नहीं है।

इसका क्या कारण हो सकता है ?

मैं इसी प्रश्नपर विचार करता हूँ तो क्या देखता हूँ, एक झीरीमेंसे विच्छू महाशय अपना डंक निकाले भागते नजर आते हैं। मेरी आहट पाते ही डरकर भागते हैं और छिप जाते हैं। मैं ढूँढ़-ढूँढ़कर थक जाता हूँ, पर उन्हें नहीं खोज पाता।

कैसा दुराव-छिपाव है इस विच्छूके जीवनमें।

सर्पका भी ऐसा ही हाल है। मनुष्यसे दूर भागकर छिपता फिरता है। ऐसा मालूम होता है कि हमारी दृष्टिसे ओझल होना चाहता हो, सामने रहते लज्जा आती हो।

सर्पके पास सजा देनेके लिये भयंकर विष है। बात-की-बातमें मनुष्यको मार सकता है। फिर भी यह दुराव, यह छिपाव, यह भय, यह भाग-दौड़ ! नजर बचानेकी आदत।

दूसरी ओर कबूतरोंका जीवन है। मेरे मकानमें जंगली कबूतरोंने घर बना लिये हैं। यही दस-बारह कबूतरोंके जोड़े हैं। रोशनदानोंमें घर बनाकर रहते हैं। बहुतेरा चाहा कि ये भाग जायँ, पर इन्होंने घोंसले बना ही लिये। अंडे देते हैं। कुछमें चीं-चीं करते बच्चे हैं। इनमेंसे कुछ बच्चे बड़े होकर उड़ गये हैं, कुछ यहीं घोंसले बनाकर रहने लगे हैं। दिनमें बीस बार इन्हें उड़ाता हूँ। सफाई करता हूँ, पर ये ऐसे ढीठ हैं कि घरसे नहीं जाते। इनकी परेशानीसे बचनेके लिये बिल्ली पाली जाती है और वह मौका पाकर एक-दो कबूतरोंका भोजन भी कर डालती है; किंतु फिर भी इनमें कमी नहीं दीखती।

मैं सोचता हूँ—ये क्यों नहीं डरते ? मेरी सज्जनताका क्यों अनुचित लाभ उठाते हैं ?

विचारोंका संघर्ष मेरे मनमें फैल रहा है। मैं पाता हूँ कि दो तरहके जानवर हैं।

एक छिपनेवाले, मनुष्यकी दृष्टिसे दूर रहने और अपने-आपको प्रकाशसे बचानेवाले—जैसे साँप, बिच्छू, मच्छर, खटमल, जूँ, पिस्सू इत्यादि। ये अन्धकारमें रहना पसंद करते हैं। ये चोरों और अपराधियोंकी तरह रहते हैं। जहाँ किसीकी नजरमें पड़ गये कि शीघ्र भागकर छिप जाते हैं। इनमें जहर भी है। ये मनुष्यके शत्रु भी हैं। इस वर्गके जीवोंसे मनुष्यको शायद कोई लाभ नहीं है।

दूसरे वर्गमें वे जीव हैं, जो उजागर रहते हैं, जिनके जीवनमें कोई दुराव-छिपाव नहीं है। इनका जीवन खुला हुआ है। ये सदा मनुष्योंके सामने रहते हैं। इस वर्गके जीवोंमें इतना भोलापन है कि इन्हें मनुष्यसे डर भी नहीं लगता। सम्भव है कुछ मारे भी जाते हों; पर फिर भी ये अपनी सरलता, भोलापन, प्रेम, सौजन्य अर्थात् स्वभावका अमृत नहीं छोड़ते। कबूतर, चिड़ियाँ, भौंरे, कुत्ते, हिरन, तोते, बुलबुल इत्यादि मनुष्यके पास रहनेमें भयभीत नहीं होते। इनके जीवनमें चोरों-जैसी छिपानेकी कोई बात नहीं है।

दो प्रकारका जीवन

मन इन दोनों प्रकारके जीवनसे कुछ जीवनके सिद्धान्त निकालना चाहता है। आखिर क्या सम्बन्ध है इस दुराव-छिपाव, विष और सरलता तथा अमृतका ?

दुराव-छिपावका मतलब है—कुछ-न-कुछ हानिकारक। सरलता, स्पष्टता और सबके साथ खुला रहनेका अर्थ है—लाभदायक होना। अर्थात् हितैषी जीवन, सबका मित्र होना।

पहला हानिकारक, तो दूसरा उपयोगी।

दूसरे शब्दोंमें वही छिपाता है, जो हानिकारक या विषैला होता है। उसके मनमें पाप होता है। पापी, दुराचारी, व्यभिचारी, समाजका शत्रु ही अपने आपको छिपाता है। उसकी अन्तरात्मा सदा ही उसे कचोटती रहती है। अपने विषको वह छिपाये फिरता है। चूँकि वह सबके लिये हानिकी बात ही सोचता है, इसलिये गुपचुप मन-ही-मन सबसे डरता भी रहता है। जहाँ कुछ खराबी है, वहीं छिपाव है।

जिसके पास सबके लिये ममता, सहानुभूति और प्रेमसे पूरित हृदय है, जो जीवमात्रका भला चाहता है, वह क्यों छिपेगा ? जो सबकी भलाई चाहता है या किसीका कुछ बिगाड़ता नहीं, वह अन्धकारमें क्यों रहेगा ?

पाप प्रकटकर मानसिक भारसे मुक्ति पाइये

किसी विद्वान्‌की यह उक्ति मुझे बड़ी सचाईसे परिपूर्ण लगती है—पापको प्रकट कर दो, वह पाप नहीं रहेगा। जिसे सब जानते हैं, जो सर्वविदित है, वह पाप नहीं हो सकता। अपना पाप प्रकट कर देना उसे धो डालना है।

यदि आपसे अनजानेमें कोई गल्ती हो गयी है और आप सच्चे मनसे उसे बुरा मानते हैं, तो स्पष्ट उसे प्रकट कर दीजिये। भविष्यमें वैसा न करनेकी प्रतिज्ञा कीजिये। बस, समझ लीजिये कि प्रायश्चित्त हो गया।

जब किसी बातको छिपानेको मन चाहे, तो सावधान हो जाइये; क्योंकि वह जरूर कुछ बुरी बात है।

हमारी नैतिक बुद्धि दमन पसंद नहीं करती। पापके कार्य यदि स्मृतिमें पड़े रहते हैं, तो मानसिक रोगोंके रूपमें फूट-फूटकर निकलते हैं। मनमें छिपी वासनाएँ अन्तर्मनसे हमारे प्रत्यक्ष जीवनको प्रभावित किया करती हैं। हमारी नैतिक बुद्धि इन समाज-विरोधी भावनाओंसे निरन्तर युद्ध करती रहती है; किंतु जब हम इसे किसीपर प्रकट कर देते हैं तो यह मानसिक द्वन्द्व समाप्त हो जाता है और मानसिक शान्ति मिल जाती है। ऐसा अनेक बार हुआ है। यह मानसिक शान्ति पानेका एक उपाय है।

एक उदाहरण लीजिये

एक बार एक महाशय आये। उनका विवाहित जीवन अच्छा था, पर उनकी पत्नी गर्भाशयका कुछ रोग होनेके कारण बच्चे पैदा नहीं कर सकती थी। उनका व्यापार अच्छा था, पर उन्हें मानसिक रोगके कारण दमा हो गया था। उनके मनमें अन्तर्द्वन्द्व था, जिसे वे मिटानेमें असमर्थ थे। इन रोगीके मानसिक जगत्‌के अध्ययनसे पता चला कि उनकी अन्तरात्मापर एक बड़ा बोझ लदा हुआ था। उनसे कहा गया कि 'आप अपने दुराव-छिपावको किसीपर प्रकट कर दें। जबतक आप अपने पाप या गलतियाँ किसीसे नहीं कहते, तबतक आपके स्वास्थ्य-लाभकी कोई आशा नहीं है।'

पहले तो उन्होंने कहा कि छिपाने-जैसी कोई बात नहीं है; परंतु जब-जब वह ऐसा कहते थे, तब-तब उनकी जिह्वा लड़खड़ाती थी। थोड़ी देर बाद ये रोगी फूट-फूटकर रोने लगे और लगभग एक घंटेतक रोते रहे। जब वे शान्त हुए, तब उन्होंने अपने जघन्य अपराधकी बात प्रकट कर दी। इसपर उन्हें आश्वासन और प्रोत्साहन दिया गया। धीरे-धीरे उनका दमा दूर हो गया। उनके मनसे पाप प्रकट होते ही आन्तरिक शान्ति मिल गयी।

हमारी अन्तरात्मामें ईश्वरका निवास है। चाहे हम कुछ दिनोंके लिये पापको दबाये रहें, पर हमारी नैतिक बुद्धि उसे मनसे बाहर निकालकर ही चैन लेती है। तभी पूर्ण शान्ति-लाभ होता है। दुराव-छिपाव ही मानसिक अशान्तिका कारण है।

तुलसीदासजीने 'विनयपत्रिका'में अपने छोटे-से-छोटे दोष भी साफ-साफ प्रकट कर दिये हैं, प्रारम्भिक जीवनकी सारी भूलें ईश्वरके सामने प्रकट कर दी हैं। ईश्वरके द्वारा वे सब दोष माफ कर दिये गये। वे पापात्मासे पुण्यात्मा बन गये। उन्हें तभी मानसिक शान्ति मिली, जब मनका मैल पूरी तरह धुल गया।

प्रसिद्ध राजनीतिक विचारक रूसोने अपनी पुस्तक 'कनफेशन्स'में स्वयं अपनी अनेक कमजोरियोंका स्पष्टीकरण कर दिया है। उन्होंने लिखा है कि 'यही मेरा प्रायश्चित्त है। इससे मुझे मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त हुआ है।'

महात्मा गांधीजी कुसंगतिमें पड़ गये थे। बीड़ी पीने और मांस-भक्षणकी बुरी आदतने उन्हें जकड़ लिया था। दुराचारी मित्रके साथ वे वेश्याके घरतक पहुँच गये थे। यकायक उनकी अन्तरात्माने उन्हें धिक्कारा। उन्हें अपनी भयानक भूलपर बड़ा पछतावा हुआ। उनका मन पाप-पुण्यके संघर्षसे बुरी तरह जकड़ा गया। अब क्या करें? अपना पाप पितापर प्रकट करते हुए उन्हें बड़ी लज्जा और आत्मग्लानि हुई। उन्होंने उसे एक कागजपर लिखा और पिताको पकड़ा दिया। पिताने इस पाप-गाथाको पढ़ा तो उनके नेत्रोंसे आँसू निकल पड़े। गांधीजी उनके पैरोंपर गिर पड़े। पिताने उनका अपराध क्षमा कर दिया। इस प्रकार उन्हें मानसिक शान्ति मिली और भावी जीवनके लिये कर्तव्य-बोध हुआ।

सब कुछ ईश्वरको अर्पित कीजिये

अतः ईश्वरको अपना जीवन समर्पित कीजिये। हम पुरानी भूलोंपर सच्चा पश्चात्ताप करें। भविष्यमें सत्कर्म करें और सुपथसे कभी विचलित न हों।

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं
सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागस-
मस्रवन्तीमारुहेमा स्वस्तये॥

(ऋग्वेद १०।६३।१०)

अर्थात् दुःखरहित, छिद्ररहित और निरपराध जीवनके लिये हम सदैव अपने आपको परमात्माके चरणोंमें समर्पित किये रहें।

द्विषो नो विश्वतो मुखाति नावेव पारय।
अप नः शोशुचदघम्॥

(१।९७।७)

अर्थात् अधिकारी जन जिस प्रकार कठिन जंगलोंमें जाकर दस्यु-जनोंको दण्ड देकर प्रजाकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार परमात्मा अपने उपासकोंके काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय-शोकरूपी शत्रुओंको मारकर उन्हें जितेन्द्रिय बनाता है।

हे ईश्वर! हमारे मनमें एकत्रित अन्धकारका नाश कीजिये और हमें आत्माका शुभ प्रकाश दीजिये, जिससे स्वार्थपूर्ण भावनाओंसे हम मुक्त रहें।

जीवनमें स्वरोदयकी महत्ता

[प्राणायाम]

(लेखक—गुरु रामप्यारेजी अग्निहोत्री)

स्वरोदयका प्रमुख अङ्ग प्राणायाम है। प्राणायामके सम्बन्धमें प्राचीन ग्रन्थोंमें विशेष साहित्यकी उपलब्धि होती है। वास्तवमें प्राणायाम मानव-जीवनका बड़ा ही उपयोगी विषय है। इससे लौकिक और पारलौकिक दोनों साधनोंकी उपलब्धि होती है। जिस प्रकार प्राणायाम योगाभ्यासियोंके लिये आवश्यक है, उसी प्रकार गृहस्थोंके लिये भी उपयोगी है। प्राणायाम ब्रह्म-प्राप्तिका श्रेष्ठ किंतु सुलभ साधन है। इससे जीवनकी उलझी हुई गुत्थियाँ सहज ही सुलझ जाती हैं। आत्मोन्नतिका श्रेष्ठ साधन प्राणायाम ही है। प्राणायामका आश्रय लेकर योगाभ्यासी इच्छानुसार देहोत्सर्ग करके जाता है। समाविस्थ होकर ब्रह्ममय हो जाता है। ब्रह्म-नाड़ीका स्फुरण प्राणायामसे ही होता है।

योग-शक्तिसे योगी मृत्युका समय निकट जानकर प्राणायाममें तत्पर हो जाता है और सहज ही मृत्युके क्षण टल जाते हैं। हृदयमें स्थित प्राणवायु जठराग्निको उद्दीप्त करनेवाली है। ज्ञान-विज्ञान और उत्साह—सभीकी प्रवृत्ति वायुसे ही होती है। शरीरके लिये ही नहीं, प्रत्युत आध्यात्मिक शक्तिके विकासके लिये प्राणायाम श्रेष्ठ साधन है। आन्तरिक शरीरके अवयवोंकी पुष्टि प्राणायामसे होती है। ज्ञान-तन्तु, मस्तिष्क इत्यादि शारीरिक दुर्बलता होनेपर भी प्राणवायुकी कमीके कारण क्षीण हो जाते हैं।

प्राणायामके अभ्यासके पूर्व योगके षट्कर्मोंकी सिद्धि आवश्यक मानी गयी है। पर आजके युगमें इन कर्मोंका प्रायः सर्वथा लोप हो गया है और शायद ही कुछ योगियों एवं अभ्यासियोंको इन कर्मोंका ज्ञान हो। ये षट्कर्म इस प्रकार हैं—(१) नेति, (२) धौति, (३) नौलि, (४) वस्ति, (५) कपालभाति और (६) त्राटक। इन षट् कर्मोंके अलग-अलग विधान हैं, जिनसे शारीरिक शुद्धि होती है; पर विना ज्ञान और अभ्यासके ये षट्कर्म सर्वथा असम्भव हैं। इन कर्मोंके द्वारा जब शरीर मल-श्लेष्मा आदिसे शुद्ध हो जाता है, तब प्राणायामका अभ्यास अधिक उपयोगी सिद्ध होता है; पर इन षट्कर्मोंके विना भी प्राणायाम सर्वथा सम्भव है; अभ्यासमें विलम्ब अवश्य होता है।

गीतामें भगवान्‌ने कहा है—

'भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्
स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥'
(अध्याय ८ । १० का उत्तरार्द्ध)

'जो अच्छी तरह मनद्वारा दोनों भौंहोंके बीच प्राणवायुकी रक्षा कर सकता है, वही उस परम ज्योतिसे सम्पन्न पुरुषको प्राप्त करनेमें सफल है।' प्राणायामके समय प्राणवायुको भौंहोंके मध्यमें स्थापित-कर साधकको अपनी दृष्टि उसीपर केन्द्रित करना चाहिये। तभी मन शान्त होता है और परम पुरुषकी प्राप्ति होती है। शिवसंहितामें कहा गया है कि 'प्राणायामकी साधनाके समय साधकके शरीरमें पहले स्वेद-प्रसव होता है और कुछ दिन लगातार अभ्यास करते रहनेसे शरीरमें कम्पन होने लगता है और तब आगे चलकर मेढ़कके चालकी गति उत्पन्न हो जाती है। अधिक कालतक अभ्यास करनेसे वायु सिद्ध हो जाती है और इच्छानुसार त्वरित गमन भी सम्भव हो सकता है; साथ ही अल्प निद्रा, अल्प मल-मूत्रादि, आरोग्यता आदिका उद्भव होता है। योगसिद्धिके लिये प्राणायाम

उत्तम साधन है। योगसिद्ध महात्मा अष्टसिद्धियोंको सहजमें ही प्राप्त कर लेता है।

प्राणवायुके सिद्ध हो जानेपर बाह्य सिद्धियाँ भी अनायास ही प्राप्त हो जाती हैं। सूक्ष्म वस्तु-दर्शनके अतिरिक्त दूर-दृष्टि, दूर-दर्शन, दूर-श्रवण, परकाय-प्रवेश, पदार्थोंका अदृश्य करना, स्वयं अदृश्य हो जाना आदि-आदिकी उपलब्धि हो जाती है। काकचञ्चु-द्वारा वायु-पान करनेसे भी यही शक्ति प्राप्त हो जाती है। वायु सिद्ध हो जानेपर आज्ञाचक्रका जागरण होता है, उस समय अभ्यासार्थीको उकताहट-सी प्रतीत होती है, शरीरमें चींटी रेंगने-जैसी गति होती है, कभी किसीके झपटनेका आभास होता है और कभी आँखोंके सामने विभिन्न प्रकारके प्रकाशका आभास होता है। यह सब योग-सिद्धिकी बाधाएँ हैं। इनसे साधकको विचलित न होना चाहिये।

प्राणायामके माध्यमसे जब आज्ञाचक्रका जागरण हो जाता है, उस समय मस्तिष्कमें विचारोंकी प्रेरणाका प्रभाव अन्य व्यक्तिके मस्तिष्कपर भी पड़ने लगता है और इस तरह विचार-प्रेरणा (टेलीपेथी) की शक्ति जाग्रत् हो उठती है। प्राण-वायुकी साधना जीवनके लिये अत्यन्त उपयोगी है। प्राणायामका अभ्यास परिपुष्ट हो जानेसे शरीरमें पसीना आने लगता है। इस पसीनेको यथास्थान मालिश करनेपर शरीरकी जडता और स्थूलता नष्ट हो जाती है, साथ ही श्लेष्मा आदिका भी शमन होता है।

प्राणायामके लिये पद्मासन ही सबसे उपयुक्त आसन है। प्राणायामका अभ्यास प्रारम्भ करनेके पहले मूलबन्ध, उड्डियानबन्ध और जालन्धर बन्धोंका जानना अत्यावश्यक है। इन बन्धोंके माध्यमसे प्राणायामका अभ्यास परिपुष्ट होता है।

१. *मूलबन्ध*—मल-मूत्रेन्द्रियके मध्यमें जो चार अङ्गुलका स्थान होता है, उसे बायें पाँवकी एड़ीसे दबाकर गुदाको आकुञ्चित करना ही मूलबन्ध है।

२. *उड्डियानबन्ध*—रेचककी अवस्थामें पेटको अंदर-की ओर श्वासके बलसे खींचकर पीठके आन्तरिक भागसे सटानेकी प्रक्रियाको उड्डियानबन्ध कहा जाता है।

३. *जालन्धरबन्ध*—कुम्भककी अवस्थामें कण्ठभाग-को संकुचितकर कण्ठके मूल भागमें ठोढ़ीके लगानेकी विधिको जालन्धरबन्ध कहते हैं।

प्राणायामके तीन भाग हैं—पूरक, कुम्भक और रेचक। पूरकमें जितना समय लगता है, उसका चौगुना कुम्भकमें और दुगुना समय रेचकमें लगना चाहिये। पूरकके समय मूलबन्ध, कुम्भकमें जालन्धरबन्ध और रेचकमें उड्डियानबन्धका प्रयोग होता है। बायीं नासिका-छिद्रसे श्वास खींचनेकी प्रगतिको पूरक; उसे हृदयमें स्थित करनेकी अवस्थाको कुम्भक और दायें नासिकाछिद्रसे उसे बाहर निकालनेको रेचक कहते हैं। बायें नासिका-छिद्रके श्वास खींचनेसे दायें नासिकाके द्वारा छिद्रसे निकालनेतककी अवस्था प्राणायामकी प्रथम आवृत्ति कही जाती है। इसकी दूसरी आवृत्ति दायें नासिका-छिद्रसे श्वास खींचकर हृदयमें स्थित करनेके बाद बायें नासिका-छिद्रसे श्वास निकालनेकी प्रक्रियाको प्राणायामकी दूसरी आवृत्ति कहा जाता है।

प्राणायामके आठ भेदोंमें अनुलोम-विलोम प्राणायाम और सूर्यभेदन प्राणायाम ही सुलभ होते हैं। अनुलोम-विलोम प्राणायाममें दाहिने नासाग्र-छिद्रको दबाकर बायें नासाग्र-छिद्रसे थोड़ी-थोड़ी वायुको बाहर निकाला जाता है और उसके बाद दाहिने नासाग्र-छिद्रसे क्रमशः वायु ग्रहणकर दोनों नासाग्र-छिद्रोंको बंद कर लिया जाता है; यही कुम्भककी अवस्था होती है। कुम्भककी अवस्था पूर्ण हो जानेपर बायें नासाग्र-छिद्रसे वही अंदर स्थित वायु

धीरे-धीरे बाहर निकाली जाती है; यही प्राणायामकी रेचक अवस्था होती है। साधारणतः प्राणायामकी यही सरल साधना है। सूर्यभेदन प्राणायाममें बाँयें नासिका-छिद्रको दाहिने हाथकी अनामिका और कनिष्ठिकासे दबाकर दाहिने नासिका-छिद्रके द्वारा जोरसे वायुको ग्रहण किया जाता है और तब उसे हृदयस्थितकर दोनों नासिका-छिद्र और मुँह बंद कर लिये जाते हैं। कुम्भक-की अवस्था पूरी हो जानेपर वही वायु बायें नासिका-छिद्रसे धीरे-धीरे बाहर निकाल दी जाती है।

प्राणायामके भेदोंमें बहुत ही सूक्ष्म अन्तर होता है। प्रायः इनकी एक ही प्रणाली होती है। उपर्युक्त प्रकारके प्राणायाम आठ दिनोंतक प्रातः, दोपहर और संध्याके समय तीन-तीन बार करनेसे शरीरमें स्वेद-प्रसव होने लगता है। जाड़ेके दिनोंमें स्वेद-प्रसव कदाचित् ही होता है। प्राणायामके समय मन स्वतः स्थिर हो जाता है। प्रारम्भमें मन एकाग्र करनेमें कठिनता अवश्य होती है; पर दोनों भौंहोंके बीच दृष्टि स्थिर करनेसे मनकी चञ्चलता दूर हो जाती है। समाधि-अवस्थाके लिये एकान्त—मध्यरात्रिका समय उत्तम होता है।

सिद्धान्ततः प्राणायामके दो भेद—'अगर्भ' और 'सगर्भ' होते हैं। जप और बिना ध्यानके जो प्राणायाम किया जाता है, उसे अगर्भ प्राणायाम कहा जाता है। जप और ध्यानके साथ किया जानेवाला प्राणायाम सगर्भ प्राणायाम होता है। सगर्भ प्राणायाम फलप्रद और जीवनके लिये सार्थक होता है। योगाभ्यासी इसी प्राणायामका आश्रय लेते हैं। अगर्भ प्राणायाम नियम-पालनके लिये किंतु फलरहित होता है। अगर्भ प्राणायामसे चित्तमें स्थिरता नहीं आती और योगाभ्यास भी परिपक्व नहीं होता। जपमें इष्टदेव-का नाम ही स्मरण किया जाता है अथवा गायत्री-मन्त्रकी आवृत्ति अंदर-ही-अंदर की जाती है। साधारणतया दो अक्षरों (राम या शिव) का नाम पूरककी अवस्थामें सोलह बार जपा जाता है। कुम्भककी अवस्थामें अड़तालीससे लेकर चौंसठ बार जपा जाना चाहिये। इससे अधिक भी नाम-जप साध्य है। रेचककी अवस्थामें पूरकसे दूना जप किया जाना चाहिये। जपके साथ इष्टदेवका ध्यान भी आवश्यक है। ध्यानकी अवस्था नासिकाग्र या दोनों भौंहोंके बीच स्थिर दृष्टि अथवा आँख बंद करनेकी अवस्थामें अन्तर्दृष्टिसे है। इससे चित्त एकाग्र होता है और इष्टदेवपर ध्यान जमता है। यह अभ्यास जब कुछ दिनोंमें परिपक्वावस्थाको प्राप्त हो जाता है, तब ध्यानमें इष्टदेवका दर्शन भी होने लगता है।

अवस्थाके अनुसार भी प्राणायामके चार भेद होते हैं—(१) कनिष्ठ प्राणायाम—साधारण अभ्यासके आगे पाँच मिनटसे अधिक वायुस्तम्भनकी दशाको कहते हैं। (२) मध्यम प्राणायाम—कनिष्ठ प्राणायाम अधिक सुदृढ़ होनेपर दस मिनटसे अधिक वायु-स्तम्भनकी दशाको कहते हैं। (३) उत्तम प्राणायाम—मध्यम प्राणायामकी अग्रिम कोटि ही उत्तम प्राणायाम है। इसमें ध्यान सुदृढ़ होता है और वायु-स्तम्भनकी अवधि पंद्रह मिनटतक हो जाती है। (४) उत्तमोत्तम प्राणायाम—इसमें प्राण-वायुका स्तम्भन अत्यन्त सुदृढ़ हो जाता है। शरीरमें स्वेद और कम्पनका वेग आने लगता है। आनन्दातिरेकमें रोमाञ्च, अश्रुपात और विभ्रमकी अवस्थाएँ उद्भूत होने लगती हैं। प्राणायामकी इस अवस्थामें अभ्यासी ऊपर उठने लगता है और शरीरमें हलकापन आ जाता है।

प्रत्येक प्रकारके प्राणायाममें प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ उद्घातोंका संचरण होता है। नाभिदेशसे वायु प्रेरित होकर ब्रह्माण्डमें जब टक्कर खाती है, तब एक उद्घात होता है। एक उद्घात-

में कनिष्ठ प्राणायामका समय लगता है। उत्तमोत्तम प्राणायाममें उद्घातकी संख्या चार अवश्य निरूपित की गयी है; किंतु इसमें चारसे अधिक भी उद्घात होते रहते हैं। आगे चलकर प्राणायामके द्वारा ही प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधिकी अवस्थाएँ परिपुष्ट होती हैं।

प्राणायामके माध्यमसे प्राणवायुपर विजय प्राप्त की जा सकती है, जिससे मल-मूत्र और कफकी मात्रामें कमी आ जाती है। अधिक भोजन पचा डालनेकी शक्ति प्राप्त हो जाती है। श्वासका प्रवाह विलम्बित हो जाता है। द्रुतगमनकी शक्ति आ जाती है। यहाँ-तक अभ्यासी अलौकिक ब्रह्मशक्तिसे सम्पन्न हो जाता है। इस तरह प्राणायाम जीवनका महान् उपयोगी विषय है, जिसकी साधना स्वरोदयके माध्यमसे ही सम्भव है।

श्यामका स्वभाव—४

(लेखक—श्रीसुदर्शनसिंहजी)

श्रुति कहती है—'रसो वै सः।' 'वह रस-स्वरूप—आनन्दस्वरूप है।'

शास्त्र और सत्पुरुष कहते हैं—'वह निखिल लोक-महेश्वर, आत्माराम, आप्तकाम है।'

इतना तो अपनेको भी पता है—यह श्रीव्रजेन्द्रका अत्यन्त लाड़ला इकलौता लाल है। अतः इसे कोई क्या देगा। इसको भला चाहिये ही क्या और सम्पूर्ण सृष्टिमें तथा उससे भी परे कुछ हो तो—कहीं ऐसा क्या है, जो कन्हाईके लिये दुर्लभ—स्पृहणीय हो।

लेकिन अद्भुत स्वभाव है इस वनमालीका। स्वयं मित्रोंके कण्ठमें मणिमाला पहनायेगा तो कहेगा—'मैं अब तेरे गलेमें ये पत्थर लटका रहा हूँ। तू इनका भार ढो।'

कोई सखा एक नन्हा पुष्प, एक गुञ्जा, एक आम्र-किसलय ले आये तो उसे दौड़कर लेने आयेगा। उसे कभी अपनी घुँघराली काली अलकोंमें खोंस लेगा, कभी भुजा या कण्ठमें अथवा कानपर रखकर नाचेगा। घरपर हुआ तो बाबाको, मैयाको और गोप-गोपियोंको, वनमें हुआ तो दाऊ दादाको, दूसरे सखाओंको बार-बार दिखलायेगा, फुदकेगा—'कितना सुन्दर! कितना उत्तम उपहार है यह मेरे सखाका।'

गोपियाँ तनिक-सी छाछ, जरा-सा माखन देती हैं और कन्हाई उनके आगे-पीछे नाचता-घूमता है। नन्द-सदनमें दूध, दही, माखनका अभाव है क्या? किंतु यह तो मोहनका स्वभाव है—अपनोंकी वस्तु तो वह छीनकर, चुराकर भी ले लेता है। कोई बालक उसके श्रीअङ्गपर गेरू या खड़ियासे कुछ अटपटी रेखा भी खींच देता है तो वह देरतक उन रेखाओंको देखता है, दूसरोंको दिखाता है—'कितना उत्तम चित्र है।'

आप क्या कहते हैं?—'कृष्ण बालक है। बचा है, भोला है' बड़ा होकर ही इसका स्वभाव कहाँ परिवर्तित हो गया।

सुदामा क्या लेकर गये थे द्वारका? एक मुट्ठी चिउड़े और वह भी दूसरोंके घरोंसे माँगे हुए। कोई लाल, कोई श्वेत, कोई मोटा, कोई पतला, कोई छोटे चावलका—कोई लंबे चावलका। चिउड़े भी एक-जैसे नहीं। जैसे सुदामाकी दरिद्रताका वे साकार रूप हों। वे चिउड़े बँधे थे गंदे, मैले, फटे चिथड़ेमें।

द्वारकाका वैभव देखकर सुदामाको साहस नहीं हुआ था कि उन चिउड़ोंका उपहार द्वारकाधीशको अर्पित करें। वे उसे अपनी बगलमें दबाये-दुबकाये

सिकुड़े जा रहे थे; किंतु कन्हाई कहीं ऐसे मानता है। इसने पूछ लिया—'भाभीने मेरे लिये क्या उपहार भेजा है ?'

क्या कहते सुदामा ? उन्होंने मस्तक झुका लिया। उनका मस्तक झुका और श्रीकृष्णका हाथ बढ़ा—'यह आप बगलमें क्या दुबकाये हैं ?'

सुदामाने और दबायी पोटली। जिसे श्रीकृष्ण खींचना चाहे, कोई दबा सकेगा, रोक सकेगा कोई ? मोहनने खींचा। जीर्ण वस्त्र फट गया। चिउड़े नीचे पादपीठपर और भूमिपर बिखर गये।

'ओह ! यह भेजा है भाभीने उपहार ! इतने उत्तम चिउड़े !' जैसे महीनोंका अकालका मारा क्षुधातुर अन्नपर टूट पड़े, उस आतुरतासे श्यामसुन्दर पर्यङ्कसे भूमिपर उतरा और उन चिउड़ोंको समेटने लगा।

पादपीठपर, भूमिपर—जहाँ अपने ही नहीं, सेवकोंतकके पैर पड़ते हैं, वहाँ गिरे-बिखरे चिउड़े त्रिभुवनका स्वामी कंगालके समान आतुरतासे समेट रहा था। समेट लेनेतकका धैर्य भी पूरा नहीं था इसमें। एक मुट्ठी समेटकर इसने मुखमें डाली—

तर्पयन्त्यङ्ग मां विश्वमेते पृथुकतण्डुलाः ॥

(श्रीमद्भा० १०।८१।९)

'प्यारे मित्र ! ये परम स्वादिष्ट तुम्हारे चिउड़े मुझे—मुझ विश्वरूपको तृप्त कर रहे हैं।' आप इतने मुग्ध, इतने प्रभावित हैं कि सम्पूर्ण समष्टिको उन चिउड़ोंका भाग दे रहे हैं—'मुझ विश्वरूपको ये तृप्त कर दे रहे हैं।'

साधारण व्यक्ति भी स्थिर, स्वच्छ स्थानपर बैठकर भोजन करता है। खड़े-खड़े, चलते-फिरते, अस्त-व्यस्त भोजन करना सामान्य शिष्टताके भी विपरीत है। शास्त्रकी मर्यादाके तो विपरीत है ही; किंतु जब कोई अत्यन्त आतुर हो जाय—शिष्टता, मर्यादा उसे स्मरण रहती है ?

न हाथ धोया, न पैर। भूमिपर बिखरे अपवित्र चिउड़ोंको समेटकर मुखमें डाल लिया और उन्हें चबाते-चबाते, फिर समेटने लगे। दूसरी मुट्ठी भर ली।

एक मुट्ठी 'विश्वरूप'को तृप्त कर चुकी। विश्वका सम्पूर्ण वैभव सुदामाका हो चुका। अब दूसरी मुट्ठी ? महारानी रुक्मिणीजीने हाथ पकड़ लिया। मित्रका लाया यह उपहार उनके आराध्यको इतना स्वादिष्ट लगा है तो उसका एक कण प्रसाद उन्हें भी तो चाहिये। उन्हें कहाँ भरी मुट्ठी मिलती है। सोलह सहस्र आठमें बँटनेपर एक कण ही तो उनके भागमें आयेगा।

× × ×

पाण्डवोंके दूत बनकर गये थे हस्तिनापुर। धृतराष्ट्रकी प्रेरणासे दुर्योधनने स्वागतकी वह प्रस्तुति की थी, जो उसने कभी किसीके लिये नहीं की। दुर्योधन पराया नहीं था। अन्ततः उसकी पुत्री लक्ष्मणाका विवाह हुआ था श्रीकृष्ण-पुत्र साम्बके साथ। उसे अधिकार था समधीका सत्कार करनेका। किंतु जब उसने भोजन-विश्रामकी प्रार्थना की, आपने दो टूक कह दिया—'इस आतिथ्यकी प्रस्तुतिके लिये धन्यवाद !'

दुर्योधन—'धन्यवादकी बात क्यों ? यह तो कर्तव्य है हमारा। आप पधारें !'

श्रीकृष्ण—'सुयोधन ! मनुष्य यदि क्षुधासे मर रहा हो तो कहीं भी भोजन कर लेता है, अन्यथा वहाँ भोजन करता है, जहाँ प्रेम हो। प्रेम मेरे प्रति आपमें नहीं है और क्षुधासे मर मैं नहीं रहा हूँ।'

श्रीकृष्ण भूखे नहीं थे, ऐसी बात नहीं है। दूरसे आये थे। पता नहीं मार्गमें अल्पाहार भी किया था या नहीं। बहुत करके नहीं किया था। डटकर भूख लगी थी; किंतु दुर्योधनका अन्न नहीं खाना था, इसलिये नहीं खाया। अन्यथा इतनी भी प्रतीक्षा नहीं कर सके कि वहीं उपस्थित विदुरजीको साथ लेकर उनके घर

जाते। विदुरजी लग गये धृतराष्ट्रको समझानेमें और श्रीकृष्णका रथ विदुरके घरकी ओर दौड़ चला।

'चाची! चाची! बहुत भूखा हूँ।' द्वारपर रथसे कूदे और बाहरसे ही पुकार लगानी प्रारम्भ कर दी।

श्यामका स्वर भी कहीं छिपता है। वह मेघ-गम्भीर स्वर श्रवणोंमें पड़ा और विदुर-पत्नी भूल ही गयीं कि वे स्नान करके उठी हैं। वस्त्र उन्होंने अभी पहने ही नहीं हैं। वे वैसे ही दौड़ीं, द्वार खोला। उनकी अवस्था देखते ही श्रीकृष्णने अपना उत्तरीय उनके शरीरपर डाल दिया।

'चाची! बहुत भूखा हूँ।' पद-वन्दन करते हुए भी एक ही रट।

विदुर-पत्नीने लाकर आसनपर बैठाया। घरमें तत्काल और कुछ तो था नहीं, पके केले थे। उठा लायीं और सम्मुख बैठकर खिलाने लगीं। वे भाव-विह्वला, उन्हें अपने शरीरकी ही सुधि नहीं तो यह कैसे पता लगता कि वे केलेका गूदा फेंकती जा रही हैं और छिलके श्रीकृष्णको देती जा रही हैं।

'बड़े मधुर! बहुत स्वादिष्ट हैं ये!' श्रीकृष्ण बड़े उल्लाससे चबाये चले जा रहे हैं वे छिलके।

श्यामसुन्दर घर गये हैं, यह पता चलनेपर विदुरजीको भी पहुँचनेकी त्वरा तो हुई ही। महाराज धृतराष्ट्रको कहकर वे लगभग पीछे-पीछे ही आये। द्वारसे घरमें प्रवेश करते ही जो दृश्य देखा—दो क्षणको चरण ठिठक गये। समीप आकर पत्नीको झिड़क दिया—'तू श्रीकृष्णको खिला क्या रही है? ला, दे केले मुझे और जाकर वस्त्र पहन।'

विदुर-पत्नीको अब शरीरका ध्यान आया। केले विदुरजीके हाथमें देकर वे संकोचसे वस्त्र बदलने चली गयीं। विदुरजीने केला छीलकर गूदेवाला भाग दिया श्रीकृष्णचन्द्रके करमें।

'चाचाजी! केला मीठा तो है; किंतु वह स्वाद नहीं है जो छिलकोंमें था।'—श्रीकृष्णने केले खाते हुए कहा।

'मुझमें वह प्रेम जो नहीं है, जो इस पगलीमें था।' विदुरके नेत्र भर आये।

× × ×

गोस्वामी तुलसीदासजीने भी श्रीरघुनाथकी रुचिका वर्णन करते हुए कहा है—

> घर गुरगृह प्रिय सदन सासुरें भइ जब जहँ पहुनाई।
> तब तहँ कहि सबरीके फलनिकी रुचि माधुरी न पाई॥

अयोध्याके महाराजाधिराजका अपना राजभवन ही छोटा नहीं था। उमड़ते हुए अगाध स्नेहसागरकी मूर्तियाँ कौसल्या, सुमित्रा आदि माताएँ और भाई; फिर अवधका कौन अभागा होगा, जो अपने घरमें अपने सम्राट्का आतिथ्य करनेको उत्सुक न हो। अनेक बार भगवती अरुन्धती श्रीरघुनाथको भाइयोंसमेत आमन्त्रित करती थीं। कभी आमन्त्रण आता था कैकयनरेशका, कभी सुमित्र-देशका और कभी दक्षिण कोसलका। मित्र भी तो थोड़े नहीं थे। जनकपुरका तो स्वत्व ठहरा अवधके कुमारों एवं अपनी कन्याओंको बार-बार बुलाकर उनका सत्कार करनेका।

श्रीरघुनाथको एक ही बात, एक ही धुन—वैसे तो परम संकोच-निधान हैं। जो सम्मुख आया, बड़े प्रेमसे आरोगेंगे। स्वाद जैसे श्रीरामको पता नहीं; किंतु जब कोई बार-बार आग्रह करके पूछे—'भोजन कैसा लगा? खूब स्वादिष्ट बना या नहीं?'

मर्यादा-पुरुषोत्तम असत्य तो बोल नहीं सकते। वे कहते हैं 'भोजन बहुत स्वादिष्ट, बहुत मधुर, बहुत प्रिय लगा; किंतु………।'

'किंतु क्या?'

'वनमें माता शबरीने बेर खिलाये थे। जो स्वाद,

जो माधुर्य उन बेरोंमें मुझे मिला था, वह माधुर्य तो फिर कहीं मिला नहीं ।'

आप जानते ही हैं कि वस्तुमें स्वाद नहीं होता। कोई पदार्थ स्वादिष्ट हुआ नहीं करता। स्वाद होता है रुचिमें। जिसकी जैसी रुचि, उसे वैसा पदार्थ स्वादिष्ट लगता है। कुछ लोगोंको भोजनमें मिर्च, मसाला, खटाई न हो तो भोजन सर्वथा अस्वाद लगे। कुछको मिर्च असह्य लगती है। मेरे कई मित्र दूधमें अधिक चीनी चाहते हैं। अधिक चीनी पड़े तो दूध मुझे अप्रिय हो जाता है। मैं ऐसे लोगोंको जानता हूँ जो मीठा बहुत खाते हैं; किंतु दूधमें थोड़ी भी चीनी डालो तो वे दूध पी नहीं सकते। अब श्रीराम या घनश्यामकी रुचि कैसी ? इन्हें पदार्थ प्रिय नहीं लगते। पदार्थ मीठा है या खट्टा, कड़वा है या कसैला—यह इनकी रसना नहीं पहचानती। पदार्थ देनेवालेके अन्तरमें प्रेम कितना है, इसके अनुसार इनकी जीभको वह पदार्थ प्रिय या अप्रिय, मधुर या कटु लगता है।

× × ×

परमभक्ता करमाबाई अपने गोपाल लालको बड़े प्रातः खिचड़ीका भोग लगाया करती थीं। स्नान-पूजन पीछे, पहिले उठते ही खिचड़ी चढ़ा देतीं। उनका भोला नन्हा गोपाल—इसे सवेरे-सबेरे ही भूख लग जाया करती है। इसे भोग लगाकर तब निश्चिन्त मनसे स्नानादि करतीं वे। उनका शरीर श्रीवृन्दावनमें छूटा।

मुझे एक महात्माने बतलाया—'करमाबाईका शरीर छूटनेके कई दिन पीछेतक उनकी कुटियासे किसी बालकके रो-रोकर पुकारनेका स्वर पड़ोसियोंको सुनायी पड़ता रहा। बालक रो-रोकर पुकारता था—'मैया ! मैया री ! मैं भूखा हूँ। मुझे खिचड़ी दे।'

मैया गोलोक पहुँच गयी। किंतु वृन्दावनकी उस कुटियामें मैयाके हाथकी खिचड़ीका स्वाद जो गोलोकके अधीश्वरकी रसनाको लगा तो उनकी सर्वज्ञता भूल गयी। उन्हें वह कुटिया खींच लेती थी और रोकर सर्वेश्वर, पूर्णकाम, आत्माराम उस खिचड़ीकी पुकार करता था।

× × ×

तुलसीदलमात्रेण जलस्य चुलुकेन वा।
विक्रीणीते स्वमात्मानं भक्तेभ्यो भक्तवत्सलः॥

पदार्थकी मात्रा नहीं और पदार्थकी जाति नहीं—आप क्या दे रहे हैं और कितना दे रहे हैं, इसे नन्द-नन्दनके नेत्र नहीं देखते। इसे दीखता है आपके हृदयका प्रेम और यदि वह प्रेम आपमें है, श्याम अनन्त है न, इसे सब अनन्त ही दीखता है।

एक दल तुलसीका—वह भी न सही, एक चुल्लू जल और उसको तो वह इतना महान्, इतना मूल्यवान् मानता है कि इसे सूझता नहीं कि उसके बदले यह क्या दे दे। उसके बदले यह अपने आपको भक्तोंके हाथ बेच देता है, सदा-सदाको भक्तका अनुचर बन जाता है।

यह रसिकशेखर स्वयं कहता है—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥
(गीता ९। २६)

पत्र—तुलसीदल, फूल, फल या जलमात्र—जो कुछ भी मेरा भक्त मुझे देता है, भक्तके उस उपहारको मैं खाता हूँ।—केवल खाता ही नहीं, **'प्रयतात्मनः अश्नामि'** बड़ी एकाग्रतासे, तन्मय होकर, बड़े स्वादसे रस ले-लेकर खाता हूँ।

धन्य हैं वे, जो कन्हाईको कुछ दे पाते हैं। भिक्षाके सही—सुदामाके समीप चार मुट्ठी चिउड़े तो थे अपने इस मयूरमुकुटी सखाको समर्पित करनेके लिये। अभाग्य तो यहाँ है कि वे भी नहीं हैं। भिक्षा माँगी नहीं जाती और जो कुछ है—मोहनका ही दिया है। उसीने जो स्वयं जुटाया····।

किंतु मैं या आप ऐसी वस्तु पायेंगे कहाँ, जो श्रीकृष्णकी न हो। कन्हाईके दानके बिना तो कुबेर भी कंगाल है। श्रीकृष्णको कहाँ स्मरण रहता है कि उसने किसे क्या दिया। उसीका पटुका उसीके कंधेसे उठाकर दो क्षण बाद सखा फिर उसके कंधेपर रख देते हैं तो यह पटुकेको छूकर, उठाकर देखता है—'सखाने कैसा सुन्दर पटुका दिया मुझे!'

'यह तो तेरा ही पटुका है।' कोई कहकर देख ले।

'कहाँ!' मोहन तत्काल अस्वीकार कर देगा—'मेरा पटुका इतना सुन्दर कहाँ था। यह तो मेरे मित्रका है—उसने दिया है मुझे।'

उसीकी वस्तु उसे देनी है और यह मैया यशोदाका लाल इतना सरल है कि यह उसे आपका उपहार मानकर ही ग्रहण करेगा। उस उपहारको इतना—इतना बहुमूल्य मानेगा कि इसे कभी नहीं सूझेगा कि उपहारके बदले क्या-क्या, कितना-कितना देनेपर प्रत्युपकार पूर्ण होगा।

एक दूर्वादल, एक किसलय, एक पुष्प, दो बूँद जल—कुछ भी; किंतु प्रेमसे, हृदयके सच्चे प्रेमसे दिया प्रेमोपहार तो श्रीकृष्ण अनन्त—अनन्त समझकर ग्रहण करता है और अपनेको भी देकर समझता है—'मैंने तो कुछ दिया नहीं। कहाँ, मैंने तो कुछ नहीं किया इस असीम अनन्त प्रेमके प्रति।'

ज्ञान-विवेक-विनाशिनी ममता

(लेखक—श्रीसुरेशजी प्रभाकर)

एक स्त्रीसे उसके एक पड़ोसीने आकर कहा कि 'तुम्हारे पुत्रको साँपने काट खाया। वह कुछ दूरपर एक बागमें बेहोश पड़ा है।' स्त्री बेचारी बुरी तरह रोती-बिलखती बागमें पहुँची। वहाँ भीड़ लगी थी, सबको हटाती हुई वह बच्चेके पास पहुँची। देखती है—अरे! वह तो उसका बच्चा न होकर पड़ोसकी दूसरी स्त्रीका है, जो उससे रोज झगड़ती है। दूसरे ही क्षण उसके बहते आँसू रुक गये। जो दहाड़ मारकर रो रही थी, वह बिल्कुल चुप हो गयी। एक क्षणमें उसकी सब परेशानी, सब कष्ट दूर हो गये।

अब यह विचार करनेका विषय है कि साँपने उस स्त्रीको कष्ट दिया अथवा उसके बच्चेने। दोनोंमेंसे किसीने नहीं। कष्ट दिया उसके हृदयमें छिपी हुई अपने पुत्रकी ममताने।

एक सज्जनके यहाँ तार आया कि उनकी बेटीकी, जिसका दो मास पूर्व ही ब्याह हुआ था, हृदयकी गति रुक जानेके कारण मृत्यु हो गयी। पूरा परिवार अचानक दुःखसे परेशान हो उठा। माँ रोने-कल्पने लगी। बापके तो मुँहसे वाणी ही छिन गयी। सोचने लगा—'इतनी बड़ी सेयी-पाली बेटी, उसके ब्याहमें कितना व्यय हुआ, उसका मैं इतना कर्जदार था आदि-आदि। बाप तुरंत अगली गाड़ीसे लड़कीके घर जानेको तैयार हुआ। सामान बँध गया। स्टेशनके लिये रवाना होनेको ही था कि एक तार आया कि सब ठीक है। बादमें पत्र आया कि लड़कीके सिरपर कौआ बैठ गया था, उसका अपशकुन मिटानेके लिये ऐसा किया गया था। उपर्युक्त कष्टका कारण ममता ही थी।

इसी प्रकार ममताके पाशमें संसारका हर प्राणी बँधा है। बच्चेकी ममतामें हिरनी भी अपना प्राण गँवाती है। राजा दशरथने पुत्रकी ममतामें ही प्राण-त्याग किया था।

एक सज्जनने अपने मकानके ऊपरके भागमें एक किरायेदार रख छोड़ा था। वह किरायेदार यदि जोरसे किवाड़ भेड़ता या छतमें कुछ ठोकता, पीटता तब किरायेदारसे बड़ी कहा-सुनी होती। वह किरायेदारसे कहता—'आप छतको नहीं, मेरे कलेजेको ठोंक रहे थे। दरवाजा जोरसे भेड़ते हैं तो मेरे कलेजेको चोट लगती है।' कुछ दिनों बाद मालिक-मकानको अपनी लड़कीके ब्याहके लिये रुपयेकी आवश्यकता हुई। उसने अपना

मकान बेच दिया और संयोगसे अगली बरसातमें वह मकान ढह गया। उसे बड़ा हर्ष एवं संतोष हुआ इस बातपर कि मकान बेच दिया गया, नहीं तो दस हजार रुपयेका नुकसान होता और लड़कीकी शादी भी न होती।

अब विचार करनेकी बात है कि मालिक-मकानको किरायेदारके छत ठोकनेसे जो कष्ट होता था, वह क्या किरायेदार उसे देता था? नहीं। वह कष्ट उसके हृदयमें स्थित उस मकानके प्रति आसक्ति—ममत्वके कारण मिलता था। निश्चय ही मकान बिकनेके कारण ममत्व-एवं आसक्ति भी समाप्त हो गयी थी। उसकी वास्तविक ममता मकानका मूल्य प्राप्त होते ही उस धनमें आ गयी और उस धनके भी व्यय होनेपर उतनी ही ममता दामाद और पुत्रीमें बढ़ गयी, जिसके कारण विवाहके बाद पुत्रीकी मृत्यु सुनकर अत्यधिक शोक हुआ और विवाहके पहले पुत्रीकी मृत्युपर शायद हृदयमें शोक-मिश्रित संतोष भी होता।

उपर्युक्त विवरणसे यह स्पष्ट है कि मनुष्यके व्यावहारिक जीवनमें अधिकांश मानसिक कष्ट ममता तथा आसक्तिके कारण ही होते हैं। आसक्तिके विषयमें अनेक प्रेमकथाएँ प्रचलित हैं, जिनमें प्रायः मानसिक और शारीरिक कष्टकी ही प्रधानता होती है, जिन्हें मनुष्य केवल आसक्तिके कारण ही उठाता है। महाकवि कालिदास एवं गोस्वामी तुलसीदासजी-जैसे बिरले ही पुरुष आसक्तिसे ऊपर उठकर अमर होते पाये गये हैं, अन्यथा अधिकांशका जीवन प्रेम-कथातक ही सीमित रहा है।

ममता और आसक्तिके बाद मानसिक धारणा एवं अनुभूतियोंका स्थान है, जो जीवनमें हर्ष एवं शोकका कारण होती है।

एक महात्मा किसी गृहस्थके यहाँ गये। घरके सब व्यक्ति बड़े प्रसन्न दिख रहे थे। महात्माने एक-एकसे प्रसन्नताका कारण पूछा। एकने बताया—मेरी स्त्री बहुत दिनोंसे बाहर गयी थी, वह वापस आ रही है। एकने कहा—मेरी माँ आ रही हैं। एकने कहा—मेरी भाभी आ रही है। एक स्त्रीके चेहरेमें किंचित् मलिनता दिखी और उसने बनावटी हर्ष दिखाते हुए कहा—'मेरी सासजी आ रही हैं।' निश्चित है कि उपर्युक्त सभी व्यक्तियोंके हृदयमें जो भी प्रतिक्रिया है, वह व्यक्तिविशेषके प्रति धारणा तथा सम्बन्धमें मित्रताके कारण। आनेवाला मनुष्य एक ही है, परंतु उसके प्रति धारणाएँ प्रत्येक हृदयमें भिन्न-भिन्न हैं। पुत्रको उसी व्यक्तिके आनेसे आनन्द है, इसलिये कि उसके हृदयमें उसके लिये 'माता'की धारणा है और बहूके लिये खिन्नताका कारण है—'सास'की धारणा।

व्यक्ति-व्यक्तिमें, वस्तु-वस्तुमें आसक्ति, ममता और धारणामें अन्तर होता है और वह सांसारिक एवं वैयक्तिक सम्बन्धके प्रकार, समय और कालपर भी निर्भर करता है।

मैंने एक नया कलम खरीदा, वह खो गया, मुझे थोड़ा दुःख हुआ। मैंने अपना पुराना कलम निकाल लिया, जिसे मैं विद्यार्थी-जीवनसे अबतक इस्तेमाल करता आया था, उससे कई परीक्षाएँ पास की थीं। संयोगसे वह भी खो गया, मुझे बहुत दुःख हुआ। नये कलमके अनुपातमें पुराने कलममें अधिक ममता थी।

जब मैं पढ़ रहा था, तभी मेरे पिताजीकी मृत्यु हो गयी। बापका अकेला बेटा था, माँ बचपनमें ही मर गयी थी। बापके मरनेपर मुझे बड़ा कष्ट हुआ; आज भी यदि उनकी याद आ जाती है तो जी भर आता है। इधर कुछ दिन पहले मैं अपने मित्रकी दादीकी तबीयत खराब सुनकर उनके घर गया। मित्रके पिताजी-ने बताया कि 'अम्मा तो बहुत वृद्धा हो चुकी हैं, बहुत दिनोंसे बीमार हैं; हमलोग तो बहुत दिनोंसे आज-कल, आज-कल देख रहे हैं, जब ही सिधार जायँ।' सुना, तीसरे दिन उनका देहान्त हो गया; फिर उनके पिताजीसे मिला, उनके चेहरेपर संतोष झलक रहा था।

ममताकी मात्रा स्वार्थकी मात्रापर भी निर्भर है। बाप बेटेको बेटेके लिये कम प्यार करता है, अपने लिये अधिक चाहता है। पुत्र पिताको पिताके लिये नहीं, पति स्त्रीको स्त्रीके लिये नहीं, अपने लिये चाहता

है। भाई भाईको भाईके लिये नहीं, अपने लिये चाहता है, अन्यथा इसी दुनियामें भाईको भाईके ख़ूनका प्यासा होते हुए भी सुना गया है।

ममताके अन्तके साथ सांसारिक सम्बन्धका दूध फट जानेपर दूध और पानीकी तरह विच्छेद हो सकता है।

एक राजा शिकार खेलने गया, मार्ग भटक जानेके कारण दूर निकल गया, काफी रात गये लौटा। देखा— उसके पलंगपर दो व्यक्ति चादरसे शरीर ढके सो रहे हैं। राजा क्रोधसे आग-बबूला हो गया कि मेरी सेजपर रानीके साथ सोनेवाला कौन हो सकता है। उसने तलवार म्यानसे खींच ली—इस विचारसे कि वह दोनोंका तत्काल वध कर देगा। संयोगसे चादर थोड़ी-सी खिसक गयी, 'अरे····', राजा स्तब्ध रह गया। रानीके साथ उसकी पंद्रहवर्षीया पुत्री सो रही थी।

किसी व्यक्तिका उसकी पत्नीके साथ कितना ही प्रगाढ़ प्रेम क्यों न हो, यदि उसे यह ज्ञात हो जाय कि उसकी पत्नी व्यभिचारिणी है तो क्या वह प्रेमरूपी ममत्व रह सकेगा ?

ममता सब दुःखोंकी मूल है। ममता जितनी ही अधिक बढ़ती है—ज्ञान और विवेक उतना ही घटता है। इसीलिये गोस्वामीजीने कहा—

ममता केहि कर जस न नसावा।

और कबीरने हारकर कहा—

ममता तू न गयी मेरे मनते।

यदि ममता करनी ही है तो भगवान्‌के स्वरूपको अपने हृदयमें पहचानो और उससे ममता करो और तब होगी प्राप्ति असीमानन्दकी—ब्रह्मानन्दकी।

श्रद्धेय श्रीजुगलकिशोरजी बिड़लाके जीवनकी कुछ सत्य घटनाएँ

(लेखक—पं० श्रीश्रीदेवधरजी शर्मा)

महाप्रस्थानके कई वर्ष पूर्व ब्रह्मलीन श्रीजुगल-किशोरजी बिड़लाका पैर फर्शपर अचानक फिसल गया। कूल्हेकी हड्डियाँ टूट गयीं। डाक्टरोंने पैरको सीधा करके उसपर भार बाँधकर लटका दिया। श्रीबिड़लाजीको असह्य पीड़ा थी, फिर भी उनके अन्तर्मनसे भगवच्चिन्तन चल रहा था। डाक्टरोंने एक्सरे लिया और हड्डीकी स्थिति देखकर आपरेशनका निश्चय किया। किंतु श्रीबिड़लाजी आपरेशन कराना नहीं चाहते थे; क्योंकि कुछ वर्ष पूर्व पौरुषग्रन्थिके आपरेशनका असीम कष्ट भोग चुके थे। उन्होंने रातमें सोते समय भगवान्‌से प्रार्थना की कि या तो मुझे उठा लो या हड्डी ठीक कर दो और भगवान्‌ने कृपा करके दूसरी प्रार्थना सुन ली।

आधी रातके बाद लगभग दो या तीन बजे एक तीन वर्षका सुन्दर, तेजोमय, नील नीरद-सी कान्तिवाला बालक बाहरसे उछलता हुआ श्रीबिड़लाजीके कमरेमें आया और उनकी शय्याके समीप खड़ा होकर पूछने लगा—'दादाजी ! आपको बहुत दर्द हो रहा है ? लाओ, अभी ठीक किये देता हूँ।' यह कहकर उस दिव्य बालकने वंशी-सरीखी किसी वस्तुसे तीन बार उन-उन स्थानोंपर स्पर्श किया, जहाँ-जहाँकी हड्डी टूटी थी। तीनों बार 'चट-चट' की आवाज हुई और पीड़ा दूर हो गयी। श्रीबिड़लाजी वेदनाके कारण अर्द्धमूर्छित अवस्थामें थे। उन्हें कुछ भान तो हुआ, किंतु यह समझकर कि घरका ही कोई बालक होगा, कुछ बोले नहीं। जब तन्द्रा भङ्ग हुई और यह अनुभव हुआ कि पैरका दर्द वास्तवमें दूर हो गया है, तब उन्होंने आँख खोलकर इधर-उधर उस बालकको देखा

और पुकारा कि कौन है ? किंतु वहाँ कोई बालक नहीं था । फिर श्रीबिड़लाजीको नींद नहीं आयी और वे गद्गद भावसे भगवत्कृपाका चिन्तन करने लगे ।

प्रातःकाल हुआ । डाक्टर बुलाये गये । उन्होंने दुबारा एक्सरे लिया तो हड्डियाँ जुड़ी हुई मिलीं । डाक्टर प्रसन्नतासे उछल पड़े । उन्होंने कहा कि यह तो चमत्कार हो गया; किंतु आत्मगोपनके धनी श्रीबिड़लाजीने रातकी घटनाके बारेमें किसीसे कुछ नहीं कहा । वे मुसकराकर मौन हो गये ।

कुछ दिनों बाद जब श्रीकृष्ण-जन्मस्थान, मथुरामें भगवद्विग्रहकी स्थापनाकी बात सामने आयी, तब उन्होंने वह रहस्य मुझको बताया और यह आकाङ्क्षा प्रकट की कि ठीक वैसा ही विग्रह निर्मित कराया जाय । उनके बताये हुए स्वरूप, आकार और वयके अनुसार शिल्पियोंने दिल्लीमें विग्रह-निर्माण प्रारम्भ किया । बीच-बीचमें श्रीबिड़लाजी स्वयं देखते और शिल्पियोंको मूर्तिका स्वरूप समझाते थे । यद्यपि उनके मनोऽनुकूल विग्रह नहीं बन सका, फिर भी बहुत कुछ सुन्दर बन गया और उसीकी स्थापना श्रीकृष्ण-जन्मस्थान, मथुराके मन्दिरमें हुई, जिसका उद्घाटन श्रद्धेय श्रीभाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) सम्पादक 'कल्याण'ने किया । तबसे जितने भी दर्शक उस भगवद्विग्रहके दर्शन करते हैं, भाव-विभोर हो जाते हैं । उस विग्रहकी स्थापनाके बादसे ही श्रीकृष्ण-जन्मस्थानका चतुर्दिक् विकास हो रहा है ।

× × ×

एक बार श्रीबिड़लाजी जेठकी दुपहरीमें दिल्लीसे कार-द्वारा चलकर मथुरा पहुँचे । साथमें मैं भी था । श्रीबिड़लाजी मथुरा आनेपर कारसे उतरते ही पहले गीता-मन्दिरमें दर्शन करते, फिर वे कोई दूसरा काम करते थे । उस दिन भी सबसे पहले गीता-मन्दिरके मुख्य प्रवेशद्वारपर पहुँचे । यद्यपि उस समय मन्दिरका पट बंद था; किंतु उन्होंने देखा कि पट खुले हुए हैं और दर्शन हो रहे हैं । उन्होंने वहाँसे प्रणाम किया और फिर मुझे कहा कि 'उत्तरवाले द्वारकी ओर धूप नहीं है, उधर ही जूते उतारकर भीतर चलेंगे ।' इसके अनुसार जब उत्तर-द्वारसे मन्दिरके भीतर पहुँचे, तब पट बंद मिला । उस समय दिनके एक बजे थे और मन्दिरका पट बारह बजेसे दो बजेतक बंद रहता है; किंतु श्रीबिड़लाजीको यह भ्रम हुआ कि पहले असावधानी-से मन्दिरका पट खुला हुआ था, अब उनको देखकर बंद कर दिया गया है । श्रीबिड़लाजी कुछ खीझकर मुझसे बोले कि 'जब पट खुला था, तब मुझे देखकर बंद करनेकी क्या आवश्यकता थी ?' मैंने विश्वास दिलाया, पुजारी और कर्मचारियोंने भी प्रार्थना की कि मन्दिरका पट बारह बजे दिनमें ही बंद कर दिया गया था । तब बाबूजी मौन हो गये और उन्होंने उसी अवस्थामें पुष्पाञ्जलि समर्पित कर दी । चलते समय यह आज्ञा दे गये कि 'भगवान्के विग्रहका चित्र उतारकर उनके पास शीघ्र भेज दिया जाय' और तबसे गीता-मन्दिरके शङ्ख-चक्रधारी भगवान्की प्रतिच्छवि उनकी दैनिक पूजा-अर्चामें प्रतिष्ठित हो गयी ।

× × ×

गीता-मन्दिर, मथुरामें प्रत्येक पूर्णिमाको श्री-सत्यनारायणकी कथा होती है और प्रसाद-वितरण किया जाता है । एक दिन प्रसादकी पँजीरी कम पड़ गयी तो केले और बतासे मँगाकर बँटवाये गये । उन दिनों श्रीबिड़लाजी वाराणसीमें थे । उसी रात उन्हें स्वप्न हुआ कि भोग कम लगा है । उन्होंने तुरंत गीता-मन्दिरके पुजारी श्रीमदनमोहनजीको पत्र लिखा कि 'भगवान्के भोगमें कमी क्यों की गयी है ? किसके आदेशसे ऐसा हुआ ?' पत्र पाकर श्रीमदनमोहनजी सन्न रह गये । उन्होंने उत्तर दिया कि भगवान्के

भोगमें किसी प्रकारकी न्यूनता नहीं है। किंतु श्रीविड़लाजीको संतोष नहीं हुआ। उन्होंने दिल्ली पहुँचकर मदनमोहनजीको बुलाया और फिर पूछा; तब श्रीमदनमोहनजीने स्वीकार किया कि उस दिन पँजीरी घट गयी थी। श्रीविड़लाजीने गम्भीर होकर कहा कि 'भविष्यमें ऐसा नहीं होना चाहिये। प्रसाद अधिक बनवा लिया करो।'

× × ×

जब महाप्रस्थानका समय आया, तब श्रीबिड़लाजीके नेत्र अपलक उधर ही देख रहे थे, जहाँ सामने उनके आराध्य भगवान् श्रीकृष्णकी प्रतिच्छवि विराजमान थी। महीनोंसे शिथिल हुए हाथ अकस्मात् ऊपर उठे, बद्धाञ्जलिकी मुद्रा बनी और जब प्रणाम निवेदित हो गया, तब उनकी नश्वर देहका हंस अलौकिक आभा बिखेरता हुआ भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें विलीन हो गया!

श्रीमद्भैरवोपासना

(लेखक—डॉ० श्रीभवानीदासजी मेहरा)

[गताङ्क पृष्ठ ९२६ से आगे]

श्रीभैरवोपासनाका साहित्य

यह कर्मकाण्ड तथा ज्ञानकाण्डके भेदसे दो प्रकारका है। कर्मकाण्डका वर्णन अधिकतर तन्त्रोंमें ही है। चौंसठ तन्त्रोंमें जैसे यामलाष्टक, बहुरूपाष्टक इत्यादि हैं, वैसे ही भैरवाष्टक प्रसिद्ध है—

सिद्धभैरवतन्त्रं च मायिकं भैरवं तथा।
कङ्कालभैरवतन्त्रं च कालाग्न्याख्यं च भैरवम्॥
शक्तिभैरवतन्त्रं च योगिनीभैरवं तथा।
महाभैरवतन्त्रं च तथा भैरवनाथकम्॥

(१) सिद्धभैरवतन्त्र, (२) मायिकभैरवतन्त्र, (३) कङ्कालभैरवतन्त्र, (४) कालाग्निभैरवतन्त्र, (५) शक्तिभैरवतन्त्र, (६) योगिनीभैरवतन्त्र, (७) महाभैरवतन्त्र, (८) भैरवनाथ-भैरवतन्त्र—ये आठ भैरवतन्त्र इस समय दुर्लभ हैं। इनमें वर्णित विविध भैरवरूपोंके पटल, पद्धति, कवच, सहस्रनामस्तोत्र, स्तवराज, हृदय तथा दीपदानविधि कहीं-कहीं मिलते हैं। ये सब शिवोक्त हैं। 'तन्त्रालोक'में ऐसा वर्णन है कि असिताङ्ग आदि अष्ट भैरवोंने आठ-आठ तन्त्र कहे, इनके अपने-अपने पञ्चाङ्ग भी दुष्प्राप्य हैं।

मेरुतन्त्रप्रकाश ३२ में केवल भैरवोपासनाका ही श्रीमहाकालभैरवजीने वर्णन किया है।

'भैरवकल्पलता,' 'भैरवपारिजात' तथा बृहज्ज्योतिषार्णवान्तर्गत 'बटुकभैरवोपासनाध्याय' संकलित ग्रन्थ हैं, बटुकभैरवोपासनाध्यायमें केवल बटुकरूपकी उपासनाकी प्रक्रिया है तथा श्रीबटुकभैरवजीके चार प्रकारके सहस्रनाम हैं। 'रुद्रयामलतन्त्र'का सहस्रनाम ठीक 'रुद्राष्टाध्यायी'के पञ्चमाध्यायके समान है।

ज्ञानकाण्डके साहित्यमें सर्वोपरि 'शिवसूत्र' है। किंवदन्ती है कि महान् कारुणिक भगवान् श्रीशंकरजीने श्रीवसुगुप्तजीको स्वप्नमें आदेश दिया कि 'महादेव' नामक शिखरके नीचे शंकरपाल नामक स्थानपर जाकर तपस्या करो। यह स्थान श्रीनगर (कश्मीर) से बारह मील दूर है। एक दिन एक विशाल-शिला उलट गयी, उसपर शिवसूत्र लिखे थे। श्रीवसुगुप्तजीको यह भी आदेश हुआ कि इन सूत्रोंके आधारपर शुद्धाद्वैतका प्रचार करो, 'शिवसूत्र' ही श्रीभैरवोपासनाके ज्ञानकाण्डका मूलस्रोत है। समस्त दार्शनिक साहित्य इन्हीं शिवसूत्रोंपर अवलम्बित है। इन्हीं शिवसूत्रोंमें सर्वप्रथम 'भैरव' शब्द आया है।

उद्यमो भैरवः

श्रीक्षेमराजजीने इन सूत्रोंपर शिवसूत्रवृत्ति तथा शिवसूत्रविमर्शिनी—ये दो ग्रन्थ लिखे, श्रीभास्करजीने इन्हीं सूत्रोंपर शिवसूत्रवार्तिकम् तथा श्रीवरदराजजीने भी इसी नामका भाष्य लिखा।

श्रीवसुगुप्तजीके शिष्य श्रीकल्लटाचार्यजीने शिवसूत्रोंपर 'स्पन्दसूत्र' अथवा 'स्पन्दकारिका' लिखी। श्रीक्षेमराजजीने 'स्पन्दसूत्र'पर 'स्पन्दसंदोह' तथा 'स्पन्दनिर्णय'—ये दो ग्रन्थ लिखे। 'स्पन्दसंदोह' स्पन्दकारिकाकी केवल प्रथम कारिकाका ही विस्तार है। श्रीसोमानन्दनाथजीने 'शिवदृष्टि' नामक ग्रन्थ लिखा और श्रीउत्पलजीने इसपर वृत्ति लिखी, परंतु आजकल यह सम्पूर्ण उपलब्ध नहीं है, केवल चार आह्निक ही मिलते हैं। 'शिवदृष्टि'में कर्म तथा ज्ञान दोनों ही काण्ड हैं।

श्रीउत्पलजीने 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका' लिखकर स्वयं उसपर 'ईश्वर-प्रत्यभिज्ञा-विवृति-विमर्शिनी' लिखी, यह भी दुष्प्राप्य है। श्रीअभिनवगुप्तजीने ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिकापर 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी' लिखी, और उन्होंने ५८००से अधिक श्लोकात्मक विशाल 'तन्त्रालोक'-जैसा ग्रन्थ भी लिखा, और स्वयं इसका सार 'तन्त्रसार'के रूपमें उन पुरुषोंके कल्याणार्थ लिख दिया, जो विशाल तन्त्रालोक-जैसे ग्रन्थका अवलोकन नहीं कर सकते। तन्त्रालोक 'स्वच्छन्दतन्त्र' तथा 'मालिनीविजयोत्तर तन्त्र'पर अवलम्बित है; इसमें दीक्षा, कुल, प्रक्रिया, शक्तिपात आदि विविध रहस्य हैं। श्रीजयरथजीने इस महान् ग्रन्थपर टीका की है।

'स्वच्छन्द' एवं 'मालिनीविजयोत्तर' तन्त्र श्रीभैरव तथा श्रीभैरवीके संवादरूपमें हैं। 'विज्ञानभैरव' तन्त्र अतिविशाल रुद्रयामलतन्त्रका सार है। यह भी श्रीभैरव-भैरवीके संवादरूपमें ही है, इसमें शुद्धाद्वैत-मत-निर्धारित योगका वर्णन है।

श्रीशंकराचार्यकृत कालभैरवाष्टक स्तोत्र प्रसिद्ध है—

'काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे'

'काशीपुरीके अधीश्वर कालभैरवको हम भजते हैं'

साधना अथवा उपासना

यह अति विशाल प्रकरण अधिकतर तन्त्रोंमें ही वर्णित है। वैदिकमन्त्र कलियुगमें शीघ्र सिद्धिप्रद नहीं माने गये हैं, जैसे—

निर्वीर्याः श्रौतजातीया विषहीनोरगा इव।
आगमोक्तविधानेन कलौ देवान् यजेत्सुधीः॥
(म० नि० तन्त्र)

'कलियुगमें विषहीन सर्पकी तरह वैदिक मन्त्र निःशक्ति होते हैं—अर्थात् शीघ्र फलप्रद नहीं होते; अतः विद्वान् साधकको चाहिये कि वह तन्त्रोक्त विधानसे देवाराधन करे।'

इसीलिये महर्षियोंने वैदिक परम्पराके आधारपर संस्थापित आगमोक्त विधान निर्धारित किये। कलियुगमें इन्हीं विधानोंसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—इन चतुर्विध पुरुषार्थरूप फलकी प्राप्ति होती है। ये विधान दो प्रकारके हैं—बहिर्याग तथा अन्तर्याग। बहिर्यागमें नित्य पञ्चोपचार पूजा तथा हवन-बलि आदि आवश्यक हैं; इसकी परिपक्वावस्था प्राप्त होनेपर ही अन्तर्यागके क्रमका उदय होता है। बहिर्याग करते-करते साधकजन अन्तर्यागके साम्राज्यमें प्रवेश करते हैं।

'परभैरवता' (पूर्णाहंता अथवा 'अहं ब्रह्मास्मि'भाव) प्राप्त करनेके जो यौगिक उपाय श्रीभैरवोपासनाके साहित्यमें वर्णित हैं, वे अत्यन्त गम्भीर होनेपर भी सरल हैं। इस साहित्यमें हठयोगपर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। कहीं-कहीं तो हठयोगके प्रमुख अङ्ग प्राणायामका निषेध भी किया गया है—

श्रीमद्वीर बलौ चोक्तं बोधमात्रे शिवात्मके।
चित्तप्रलयबन्धेन प्रलीने शशिभास्करे॥
प्राप्ते च द्वादशे भागे जीवादित्ये स्वबोधके।
मोक्षः स एव कथितः प्राणायामो निरर्थकः॥
प्राणायामो न कर्तव्यः शरीरं येन पीड्यते।
रहस्यं वेत्ति यो यत्र स मुक्तिः स च मोचकः॥
(श्रीतन्त्रालोक ४। ९०-९१)

यहाँ 'चित्तप्रलय' विश्रान्तावस्था है, जो 'प्रलीने शशिभास्करे' प्राण-अपानके प्रवाहका प्रलीन होना है। 'द्वादशे भागे' द्वादशान्तस्थान ही है' 'स्वबोधके स्वात्मप्रकाश अर्थात् चितिकी स्वरूपस्थिति कैवल्य अथवा मोक्ष है। इस रहस्यको जो जानता है, वही मुक्त और मुक्तिदाता भी है। वह प्राणायाम, जो शरीरको पीड़ा देता है, नहीं करना चाहिये।

गीता अध्याय १७ श्लोक ६ में भी इसका संकेत है—'मां चैवान्तःशरीरस्थम्'

मानसं चेतनाशक्तिरात्मा चेति चतुष्टयम्।
यदा प्रिये परिक्षीणं तदा तद्भैरवं वपुः॥

हे प्रिये ! मन, बुद्धि, प्राण तथा जीवात्मा—ये चारों जब परिक्षीण हो जाते हैं, तब जो शुद्ध प्रकाशरूप चितिशक्ति रह जाती है, वही श्रीभैरवस्वरूप है। योगसूत्रोंके अनुसार चितिकी स्वरूपस्थिति ही कैवल्य है, यही परभैरवता है, अनेक कोटि ब्रह्माण्ड इसीके विलासमात्र हैं।

'चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुः'
(प्रत्यभिज्ञाहृदय, प्रथम सूत्र)

'सर्व (विश्व) सिद्धिकी हेतुभूता चितिशक्ति स्वतन्त्र है।'

इस परभैरवताकी प्राप्ति ही समस्त उपासनाका लक्ष्य है, जिसमें जपादिद्वारा मन संकल्पशून्य निराधारावस्थाको प्राप्त होता है तथा जीवात्मा पूर्णाहंताका अनुभव करता है।

निराधारं मनः कृत्वा विकल्पान्न विकल्पयेत्।
तदाऽऽत्मनि परमात्मत्वे भैरवो मृगलोचने॥
(विज्ञानभैरव)

'मनको आधारशून्य बनाकर जब वह किसी तरहके विकल्पोंका चिन्तन नहीं करता है, तब यह जीवात्मा परमात्मस्वरूपको प्राप्त होता है, वही श्रीभैरव है।'

पूर्णाहंताका अनुभव होनेपर साधककी ऐसी स्थिति होती है—

सर्वज्ञः सर्वकर्ता च व्यापकः परमेश्वरः।
स एवाहं सैवं धर्मं इति दार्ढ्याच्छिवो भवेत्॥

'सर्वज्ञ सर्वकर्ता-धर्ता-संहर्ता सर्वव्यापक परमेश्वर ही मैं हूँ, वही धर्म है—इस भावनाकी दृढ़तासे साधक साक्षात् शिवस्वरूप बन जाता है।'

तन्त्रालोकमें ऐसा वर्णन आता है—

चित्तचित्रपुरोद्याने क्रीडेदेवं हि वेत्ति यः।
अहमेव स्थितो भूत्वा भावतत्त्वपुरैरिति[2]॥
(११।१०२)

'मैं ही संसारमें समस्त आत्मरूपसे विद्यमान हूँ, इस प्रकार जो विचार करता है, वह चित्तरूप चित्रपुरके उद्यानमें क्रीडा करता है अर्थात् अपनी आत्मामें ही पूर्णतया विश्राम करता हुआ जीवित ही मुक्त हो जाता है।'

श्रीजयदेवजीने भी इसकी व्याख्या करते हुए 'क्रीडेत्' का ऐसा ही अर्थ किया है—स्वात्मन्येव[3] पूर्णतया विश्राम्यन् जीवन्नेव मुक्तो भवतीत्यर्थः।

'विज्ञानभैरव' में आया है कि साधनाकी परिपक्वावस्था होनेपर परम कारुणिक परमात्मा साधकको शाम्भवी मुद्रा प्रदान करते हैं, जिसका स्वरूप इस प्रकार है—

अन्तर्लक्ष्यबहिर्दृष्टिर्निमेषोन्मेषवर्जिता।
इयं तु शाम्भवी मुद्रा सर्वतन्त्रेषु गोपिता॥

'लक्ष्य अन्तरकी ओर हो और दृष्टि बाहर हो एवं निमेष (पलकोंका गिरना) 'उन्मेष (पलकोंका ऊपर उठना)-से रहित यह शाम्भवी मुद्रा है, जो सब तन्त्रोंमें गोपनीय है।'

अन्यत्र भी कहा है—

आकाशं विमलं पश्यन् कृत्वा दृष्टिं निरन्तराम्।
स्तब्धात्मा तत्क्षणाद्देवि भैरवं वपुराप्नुयात्॥

'निरन्तरा अर्थात् निमेषोन्मेषशून्य दृष्टि करके निर्मल आकाशको देखता हुआ साधक जब निश्चलात्मा बन जाता है, तब वह तत्क्षण भैरव शरीरको प्राप्त कर लेता है।'

शाम्भवी मुद्रामें 'उन्मनी' की प्राप्ति होती है, तन्त्रोंमें आज्ञाचक्रके ऊपर आठवें स्थानपर उन्मनी मानी गयी है। इसीको 'रुद्रवक्त्र' कहते हैं। स्वच्छन्दसंग्रहमें इसका वर्णन आता है कि इस स्थानपर देशकाल-तत्त्व तथा देवताओंका आभासमात्र भी नहीं होता। स्वयंप्रकाश परभैरवता या पूर्णाहंभाव ही निर्विकल्प निरञ्जन साक्षिमात्र 'चिति' रूपसे विद्यमान रहता है।

त्रिपुरोपनिषद्में उन्मनीभावका वर्णन है—

निरस्तविषयासङ्गं संनिरुद्धं मनो हृदि।
यदाऽऽयात्युन्मनीभावं तदा तत्परमं पदम्॥

'विषयासक्तिका परित्याग करके मन जब हृदयमें भलीभाँति निरुद्ध हो जाता है, तब वह उन्मनीभावको प्राप्त करता है; वही परम पद है।'

बृहन्नारदीयपुराणमें भी उन्मनीभावका वर्णन है—

---

१. अत्र 'सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम्' इति सुलोपे वृद्धिः।

२. जगच्चित्रं स्वचैतन्ये पटे चित्रमिवार्पितम्।
मायया तदुपेक्ष्यैव चैतन्यं परिशेष्यताम्॥
(पञ्चदशी चित्रदीपप्रकरण)

मायामेघो जगन्नीरं वर्षत्वेष यथा तथा।
चिदाकाशस्य नो हानिर्न वा लाभ इति स्थितिः॥
(कूटस्थदीप)

३. 'सर्वमसीत्युपासीत'

ध्यानध्यातृध्येयभावं यदा पश्यति निर्भरम् ।
तदोन्मनस्त्वं भवति ज्ञानामृतनिषेवणात् ॥

'जब यह मन ध्यान, ध्याता एवं ध्येय—इन तीनोंको घनीभूत एकीभावसे देखता है, तब वह ज्ञान-सुधाके सेवनसे उन्मनस्त्वको प्राप्त करता है ।'

यही परमपद है, तन्त्रोंमें इसकी प्राप्तिके लिये प्रार्थना है—

नेत्रे ययोन्मेषनिमेषमुक्ते
वायुर्यया वर्जितरेचपूरः ।
मनश्च संकल्पविकल्पशून्यं
मनोन्मनी सा मयि संनिधत्ताम् ॥

'जिससे नेत्र निमेषोन्मेषशून्य, वायु रेचक-पूरकसे एवं मन संकल्पविकल्पसे रहित हो जाते हैं, मनका वह उन्मनीभाव मुझमें संनिहित हो जाय यजुर्वेदमें 'मनोन्मनाय नमः' पद आया है, यह परम पद चिति ही है—

यत्र सर्वे समायान्ति दह्यन्ते तत्त्वसंचयाः ।
तां चितिं पश्य कायस्थां कालानलसमप्रभाम् ॥

'जहाँ सब पहुँचते हैं तथा सारे तत्त्व-संचय भस्मसात् हो जाते हैं, कालाग्निसम कान्तिवाली अपने शरीरमें ही विराजमान उस चिति-शक्तिको देखे ।

इसी 'अहम्' अथवा चितिकी प्राप्तिको ही श्रीभैरवोपासना कहते हैं* ।

ॐ नमश्चिद् भैरववपुषे स्वात्मशम्भवे ।

यज्ञोपवीत

राष्ट्रीय एकता, उत्कर्ष एवं सदाचारका सूत्र

(लेखक—श्रीदेवनारायणजी भारद्वाज)

काश्मीर हो या कन्याकुमारी, द्वारका हो या जगन्नाथपुरी—प्रत्येक स्थानपर ऐसे व्यक्ति मिल जायँगे, जो निर्धन हों या धनवान्, समानरूपसे अपने शरीरपर जनेऊ धारण किये होंगे । ये धागे भारतकी वास्तविक एकताके प्रतीक हैं । विशेषता यह है कि इनसे न केवल भौतिक अथवा बाह्य एकता ही प्रकट होती है, अपितु ठोस और आन्तरिक एकताका भी आभास होता है; क्योंकि जनेऊधारी व्यक्तियोंकी मनोवृत्ति, संस्कृति एवं जीवनवृत्तिमें प्रायः एकरूपता होती है । अतिप्राचीन कालसे अबतक यज्ञोपवीतका निरन्तर प्रयोग होता रहा है । प्राचीनकालमें कर्मनिष्ठ तथा जागरूक नागरिककी वयपर पहुँचनेसे बहुत पूर्व कर्तव्यपरायणताके लिये सम्मान-स्वरूपसे सूत्र प्रदान किये जाते थे ।

जनेऊसे आध्यात्मिक, मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्यके अनेक लाभ प्राप्त होते हैं, जो विज्ञानसम्मत हैं । किंतु यहाँपर लेखकका लक्ष्य उन लाभोंकी लंबी व्याख्या करना नहीं है, अपितु भारतकी एकता, सम्पन्नता एवं सचरित्रताके अनुपम प्रतीकके रूपमें उसका महत्त्व प्रदर्शित करना है; क्योंकि आज जनेऊकी उपेक्षाने जन्म ले लिया है । आपने देखा होगा कि सिखमतावलम्बी सरदारजी इस आधुनिक युगमें अपनी दाढ़ी और पगड़ीपर गर्व करते हैं और इनके सम्मानके लिये कुछ भी करनेको कटिबद्ध हो जाते हैं । समाचारपत्रोंमें इंगलैंडकी उस घटनाका पर्याप्त वर्णन हुआ है, जिसमें दाढ़ी और पगड़ीके प्रतिबन्धके विरोधमें सरदारोंने आन्दोलनका निश्चय किया था । पंजाब ही नहीं, भारतके सभी प्रदेशों और फैशनपूर्ण नगरोंमें सरदार अपनी दाढ़ी और पगड़ीको सगर्व धारण करते हैं—चाहे अमृतसर हो या अहमदाबाद । भारतमें जिस पश्चिमी सभ्यताका आज नग्न-नृत्य हो रहा है, उसके उद्गम स्रोत पश्चिमी देशोंमें भी सरदारोंने अपने मानबिन्दुओंको ऊँचा उठाकर उन्नत गुरुद्वारोंकी स्थापना की है ।

एक अन्य उदाहरणका अवलोकन करें । पश्चिमी वेश-भूषाका आज स्वदेशमें बड़ा प्रचलन है । बात कोट-पैंट, शूट-बूटकी ही नहीं है, अपितु ईसाकी फाँसीका चिह्न 'टाई' प्रायः सभीके गलेमें झूलती रहती है । ईसाई तो उसे

* इस लेखमें श्रीभैरवजीके विविध रूपोंके मन्त्र गुह्यतम होनेके कारण नहीं लिखे गये । लेख अतिविस्तृत होनेके भयसे समस्त भैरवरूपोंके ध्यान भी नहीं दिये गये । मन्त्रों तथा ध्यानोंकी जानकारीके लिये ग्रन्थोंके नाममात्र लिख दिये गये हैं ।—लेखक

अपना धर्मचिह्न मानकर बाँधते ही हैं; किंतु अपर जन भी उसमें फँसकर आनन्दित या निन्दित होते हैं। ये दोनों उदाहरण अपने धर्मबिन्दुओंके प्रति अपार आस्थाके परिचायक हैं। प्रत्येक देशकी धरतीके गर्भमें विशेष प्रवृत्तिकी संस्कृति अवतीर्ण होती है और उस संस्कृतिके प्रति आस्था रखनेवाले व्यक्ति ही सच्चे नागरिक होते हैं। इसी प्रकार भारत (हिंदुस्तान) की अपनी परम्परा और वैभवशालिनी संस्कृति है। भारतके भूतपूर्व राष्ट्रपति डाक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्णन्ने हिमालयसे बिन्दुसरोवरतक फैले स्थानको हिन्दुस्तान कहा है और इसके बीच निवास करनेवाले हर नागरिकको हिन्दु। हिमालयका प्रथम अक्षर 'हि' और बिन्दुके अन्तिम अक्षर 'न्दु'के संयोगसे 'हिन्दु'की उत्पत्ति उन्होंने बतायी है। इस प्रकार हिन्दु हिंदुस्तानकी राष्ट्रीयताका पर्याय है। राष्ट्रका उत्कर्ष उसके नागरिकोंकी अपने मान-बिन्दुओंके प्रति आत्मिक अनुष्ठानपर आधारित है।

हमारा तात्पर्य यह बिल्कुल नहीं है कि प्रत्येकको एक-दम साधु-संन्यासियोंका जीवन व्यतीत करना पड़े; किंतु आधुनिक ढंगसे रहते हुए अपने मूल मानबिन्दुओंके प्रति सतर्कता तो रक्खी ही जा सकती है। आज स्थिति कुछ विचित्र होती जा रही है। प्राचीन कालमें जिस चोटीकी रक्षामें बच्चा-बच्चा प्राण देनेको तत्पर रहता था, वही आज लज्जाका विषय बन गयी है। सिरपर उसका चिह्नमात्र ढूँढ़नेपर भी मिलना कठिन है। यही स्थिति आज यज्ञोपवीत-की हो रही है। अतिशय आधुनिकताके भ्रमजालमें फँसकर और-तो-और, ब्राह्मणजन भी अपने यज्ञोपवीतको उतारकर प्राचीन परम्परासे शीघ्र मुक्ति पाने लगे हैं। कारण, उसको धारण करनेपर स्वयं ही अपने ऊपर कुछ नियन्त्रण करना होता है और वह सदाचारके लिये सदा प्रेरित करता रहता है। यज्ञोपवीतका प्रेरक उद्देश्य उसकी रचना-प्रक्रियामें स्वयं निहित है। जरा अवलोकन कीजिये।

यज्ञोपवीत चव्वपर ९६ बार लपेटा जाता है। इसलिये यह ग्यारह सौ इकतीस शाखाओंमें विभक्त चार वेदोंमें स्थित कर्मकाण्ड एवं उपासना-काण्डके ८०+१६=९६ सहस्र मन्त्रोंका अधिकार—मानपदकके रूपमें द्विजको अर्पण किया जाता है। वे ९६ सहस्र मन्त्र चारों वेदोंके हैं, इस-लिये चार अँगुलियोंपर उतनी संख्यासे सूत्र लपेटा जाता है। फिर जो इसे तिगुना करके ऊपर बायीं ओर लपेटा जाता है, इससे इसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य—इन तीन वर्णोंका अधिकार बताया जाता है। फिर इस तीन लड़ीवाले सूत्रको तिगुना करके पुनः दाहिनेसे नीचे लपेटा जाता है; इससे ब्रह्मचर्य, गृहस्थ एवं वानप्रस्थ—इन तीन आश्रमोंको इसमें अधिकृत बताया जाता है। अब इस नवसूत्र डोरेको इस प्रकार तिगुना किया जाता है कि जिससे तीनों सूत्रोंकी योजना सिरेमें एक हो जाय। यह इस बातका द्योतक है कि जन्मसे ही मनुष्यपर तीन ऋण होते हैं—जिन्हें पितृऋण, देवऋण और ऋषिऋण कहते हैं। इन तीन ऋणोंसे उऋण होनेके लिये पञ्च महायज्ञोंका विधान है, जिन्हें मनुने अनिवार्य बताया है। इसीलिये यज्ञोपवीतमें पाँच ग्रन्थियाँ लगायी जाती हैं। इन तीन ऋणों तथा पाँच यज्ञोंको द्विजको हृदयसे स्वीकार करना होता है और चूँकि मनुष्यके शरीरमें हृदय वाम भागमें स्थित है, अतः इसे बायें कंधेसे दाहिनी ओर धारण किया जाता है।

इस प्रकार यज्ञोपवीत-संस्कार एक अर्थमें द्विजके कर्तव्य कर्मोंकी ओर संकेत करता है, अतः यज्ञोपवीत द्विजके लिये अनिवार्य है। जिस प्रकार अभी यज्ञोपवीतका विश्लेषण किया गया है, उसी प्रकार यदि इसका पालन किया जाय तो राष्ट्रके नागरिकोंमें किसी प्रकारकी बुराई शेष न रहे और मानसिक तथा आध्यात्मिक स्तर सदा उच्च रहे, जिससे देश हर क्षेत्रमें उन्नत तथा समृद्ध हो। द्विजसे तात्पर्य (द्वि+ज) दो बार जन्म होनेसे है। एक बार माता-पितासे और दूसरी बार गायत्री माता या विद्याके ग्रहणसे। इसलिये यज्ञो-पवीत धारण करनेमें संकोच न कीजिये और चोटी भी मत त्यागिये। ये वस्तुएँ आपकी आधुनिकतामें बड़ी बाधक भी नहीं हैं। जनेऊ अंदर रहता ही है और छोटी-सी चोटीसे कोई बड़ा अन्तर नहीं पड़ेगा; किंतु एकताके ये सशक्त सूत्र हमें सन्मार्गकी ओर अवश्य प्रेरित करेंगे। प्राचीन कालमें तो नारियाँ भी यज्ञोपवीत धारण करती थीं। यह सत्य है कि भाषा एवं वेषभूषाका मनुष्यके आन्तरिक विचारोंपर अवश्य प्रभाव पड़ता है। आज जो उच्छृङ्खलता और विध्वंसात्मक ध्वनि युवकोंमें है—वह हमारी इसी असावधानीके कारण है, जिसे इन्हीं मान-बिन्दुओंके पालनसे शान्त किया जा सकता है।

कामके पत्र

(१)

परदोष-दर्शन तथा परनिन्दा न करें

सप्रेम हरिस्मरण ! आपका कृपापत्र मिला। उत्तरमें निवेदन है कि जो मनुष्य अपनी यथार्थ उन्नति और अपने जीवनको दोषरहित एवं सद्गुणसम्पन्न बनाना चाहता है, उसके लिये यह आवश्यक है कि वह अपने छोटे-से-छोटे दोषको भी ढूँढ़-ढूँढ़कर दूर करता रहे। अपने दोषपर कभी क्षमा न करे और दूसरोंके दोष कभी न देखे। न किसीकी निन्दा करे। अपने दोष दिखायी देनेपर दूसरोंके दोष देखनेकी तथा दूसरोंकी निन्दा करनेकी इच्छा अपने-आप ही कम हो जायगी।

यथार्थमें मनुष्यके लिये 'परदोषदर्शन' तथा 'परनिन्दा' सदा ही त्याज्य हैं। दूसरेका गुण-दोष—कुछ भी न दीखे तो सर्वोत्तम; नहीं तो गुण दीखनेमें हानि नहीं है और प्रत्येक प्राणीमें कुछ-न-कुछ गुण होता ही है। मनुष्यको वैसे ही उस गुणको ही देखना तथा ग्रहण करना चाहिये, जैसे चीनी मिली हुई बालूमेंसे चींटी बालू छोड़कर चीनी-चीनी खा लेती है। जिन दोषोंके लिये किसीकी निन्दा की जाती है, वे दोष क्रमशः अपनेमें आ जाते हैं; क्योंकि बार-बार उन्हींका चिन्तन-मनन-कथन होता है। दूसरोंको उससे दुःख भी होता ही है; क्योंकि निन्दा कहते उसीको हैं, जिसमें किसीके दोष बताकर उसे दूसरोंकी नजरसे गिराया जाता है। अवश्य ही अन्तःकरणमें बड़े सौहार्दके साथ किसीके हितके लिये उसके दोष बताना निन्दा नहीं है, पर ऐसा होना बड़ा ही कठिन है। हाँ, अपनी निन्दा मनुष्यको धैर्य, शान्ति एवं साहसके साथ सुननी चाहिये और निन्दा करनेवालेके प्रति द्वेष न करके यह मानना चाहिये कि ये मुझे सर्वथा निर्दोष देखना चाहते हैं, इसीसे मेरे दोष ढूँढ़-ढूँढ़कर प्रकट करते हैं। और शान्त चित्तसे देखना चाहिये कि अपनेमें वह दोष है या नहीं। यदि है तो उसे हटाना चाहिये और दोष बतलानेवालेका उपकार मानना चाहिये। कबीर तो कहते हैं—

> निंदक नियरे राखिये आँगन कुटी छवाय।
> बिनु पानी बिनु साबुना निर्मल करै सुभाय॥

शेष भगवत्कृपा।

(२)

भगवन्नाम ही सरल साधन है

सप्रेम हरिस्मरण ! पत्र मिला। मेरी अपनी धारणा तथा अनुभवके अनुसार सर्वोपयोगी सरल साधन श्रीभगवान्का नाम है। कलियुगपीड़ित मानवोंके लिये योग, तप, वेदान्त तथा उच्चस्तरकी भक्ति आदि साधन असम्भव नहीं, तो अत्यन्त कठिन अवश्य हैं। उनके लिये तो एक भगवन्नाम ही ऐसा सर्वोपयोगी सफल सरल साधन है, जिससे सभी साधनोंका फल प्राप्त हो सकता है। भगवन्नामका आश्रय लिया जाय, साथ ही अभिमान तथा दम्भका परित्याग करके प्राणिमात्रका आदर-सम्मान किया जाय तथा जीवनमें बाहरी दिखावट न हो तो भगवान्की कृपासे मनुष्य-जीवन सहज ही सफल हो सकता है। अवश्य ही भगवत्कृपापर विश्वास हो तो सोना और सुगन्ध दोनों हैं। × × शेष भगवत्कृपा।

(३)

मेरा अनुभव

प्रिय महोदय ! सादर हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला था। उत्तर देरसे जा रहा है, क्षमा कीजियेगा। मैं अपना क्या अनुभव बतलाऊँ आपको ! जीवन त्रुटियोंसे भरा था—अब भी त्रुटियोंका, दुर्बलताओंका पार नहीं है। साधनके नामपर है केवल सहज सर्वसुहृद् भगवान्की कृपापर किसी अंशमें विश्वास। इस आंशिक विश्वासमें भी उनकी अहैतुकी कृपा ही कारण है।

आप लिखते हैं, बहुत-से और लोग भी ऐसा मानते-समझते हैं कि 'मैंने धर्मका, भक्तिका, भगवद्भावका, शुद्ध ज्ञानका बड़ा प्रचार किया है, 'कल्याण'के द्वारा बड़ी सेवा की है और मैं आध्यात्मिक क्षेत्रका एक विशिष्ट पुरुष हूँ।' ऐसी ही और भी बहुत-सी बातें कही जाती हैं; पर मेरा अन्तर्यामी जानता है कि मैं क्या हूँ, कैसा हूँ। गीताप्रेसकी स्थापना की थी परम श्रद्धेय ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दकाने। 'कल्याण' भी किन्हीं एक अन्य मित्रकी प्रेरणासे निकला था। मैं तो वैसे ही योग्यता न होनेपर भी जबरदस्ती काममें जोत दिया गया और बार-बार काम छोड़कर भागनेकी इच्छा होनेपर भी भागनेकी सुविधा नहीं मिल पायी। 'कल्याण'में बहुत अच्छे-

अच्छे लेख निकले; गीताप्रेसके द्वारा भी आध्यात्मिक, धार्मिक ग्रन्थोंका कुछ प्रकाशन हुआ—पर किसी भी योजनाके बिना अपने-आप ही संयोग बनते गये। योग्य-से-योग्य विद्वान् तथा अपने विषयके अनुभवी लेखक मिलते गये—प्रेरणा मिलती गयी। काम होता गया। किया किन्हींने, हुआ किन्हींकी बुद्धिसे, ज्ञान किन्हींका, व्यवस्था किन्हींने की और सबके साथ नाम मेरा जुड़ता रहा। इस प्रकार नाम जुड़े रहनेसे जो यश-कीर्ति हुई, उसका भागी मैं बना। सदा तो मनसे नहीं, पर कभी-कभी, मनसे भी, इस श्रेयकी कीर्तिको मैंने स्वीकार किया। अब भी कर रहा हूँ—यह अवश्य ही मेरी दुर्बलता है। यह है मेरा स्वरूप, पुरुषार्थ एवं अनुभव!

हाँ, भगवत्कृपाने—यद्यपि उसपर मेरा विश्वास आंशिक ही है—मुझे बहुत बचाया। मिथ्या श्रेयकी दुर्बलताको विशालरूपमें बढ़ने नहीं दिया। नहीं तो पता नहीं कितना मिथ्या अभिमान बढ़ता और वह किस पतनके गहरे गड्ढेमें मुझे गिरा देता। भगवत्कृपाने केवल इसी विपत्तिसे नहीं बचाया, जब-जब धन-मानके बहुत बड़े-बड़े प्रलोभन आये, तब-ही-तब विवेकको जगाकर उचित मार्ग-प्रदर्शन किया; जब-जब पतनके प्रसङ्ग आनेको हुए, तब-तब पहलेसे ही ऐसे प्रतिबन्ध लगा दिये कि उधर झाँकना भी सम्भव नहीं रहा। भगवत्कृपासे ही भगवान्‌के नामका यत्किंचित् आश्रय रहा, जो अब भी है ही। पूर्णरूपसे तो नहीं, परंतु आंशिकरूपसे मैं श्रीतुलसीदासजीके इन शब्दोंको अपने लिये दुहरा सकता हूँ—

सकल अंग पद-बिमुख नाथ! मुख नाम की ओट लई है।
है तुलसिहि परतीति एक, प्रभु-मूरति कृपामई है॥

शेष भगवत्कृपा।

(४)

वर्तमान दुर्दशाका कारण

कृपापत्र मिला। धन्यवाद! दो प्रकारके मनुष्य होते हैं—(१) भगवत्प्राप्ति या मोक्षको जीवनका लक्ष्य अथवा परम-चरम उद्देश्य माननेवाले और (२) भोगको ही जीवनका लक्ष्य—उद्देश्य माननेवाले। (ये ही आसुर भावका आश्रय करनेवाले असुर-मानव होते हैं)। जिस समय दूसरे प्रकारके लोगोंकी संख्या बढ़ जाती और वे छल-बल-कौशलसे अधिकसंख्यक लोगोंका संगठन करके समाज, देश या राष्ट्र-विशेषके नेता बन जाते अथवा किसी भी देश या राष्ट्रके संचालक और शासक अथवा धार्मिक नेता पुरुष बन जाते हैं, तब तो सर्वत्र इन्हींकी तूती बोलने लगती है और इन्हें श्रेष्ठ मानकर इन्हींका अनुकरण करनेवालोंकी संख्या बढ़ने लगती है। जीवनका लक्ष्य भगवान् न रहकर भोग हो जानेसे कर्तव्य, त्याग और प्रेमके स्थानपर अर्थ, अधिकार और द्वेष बढ़ जाते हैं, जिससे सब अशान्त एवं दुखी हो जाते हैं। ये असुर-मानव वास्तविक सदाचार, सत्य, शौच आदि धर्ममूलक कार्योंमें रुचि नहीं रखते; इनकी क्षुद्र स्वार्थजनित प्रवृत्ति केवल पापमूलक कर्मोंमें ही रहती है। इनके मनमें घोर विषयासक्ति और भोगलालसा छायी रहती है। अतएव ये लोग जो कुछ सोचते-विचारते—करते हैं, सब केवल भोग-दृष्टिसे ही। इनके जीवनमें सदाचार, सत्य, त्याग, न्याय, परहित तथा ईश्वर-विश्वासके लिये स्थान नहीं रहता। ये नये-नये दल बनाकर—जब जिस प्रकारसे स्वार्थ-साधन होता है, वैसे ही बनकर लोगोंको कुपथपर चलाते रहते हैं। वास्तवमें भोगवासनाजनित क्षुद्र स्वार्थवश इनकी बुद्धि क्षुद्र, विकृत हो जाती है; अतएव ये दम्भ, मान, मद, काम, क्रोध, लोभके वशमें हुए मनमाने आचरण करते-करवाते और उसीको प्रगति, उन्नति या विकासका नाम देते हैं। समय-समयपर ये बहुत उग्र कर्म करते हैं। इनकी भोग-कामना कभी पूरी होती ही नहीं। ये दिन-रात चिन्तामें डूबे, सैकड़ों-सैकड़ों आशापाशोंसे बँधे हुए कामोपभोगको ही जीवनका परम पुरुषार्थ मानते हुए भोगोंकी प्राप्तिके लिये भाँति-भाँतिके छल-कपट, मिथ्याचार-भ्रष्टाचार, अनाचार-अत्याचार, वैर-विरोध, कलह-हिंसा आदिमें लगे हुए अपना तथा जगत्‌के प्राणियोंका अहित-साधन करते रहते हैं।

वर्तमान युगमें इसी प्रकारके असुर-भावापन्न लोगोंकी प्रभुता और संख्या बढ़ रही है। इसीसे नयी-नयी समस्याएँ पैदा हो रही हैं; व्यर्थका द्वेष, कलह, वैर, संघर्ष, हिंसा आदि बढ़ रहे हैं और मानवसमाज पतन तथा विनाशकी ओर अग्रसर है।

इससे बचनेका उपाय है—'जीवनका लक्ष्य भगवत्प्राप्ति ही है' यह दृढ निश्चय करना और यथासाध्य भगवत्प्राप्तिके साधनरूप दैवीसम्पदाका सेवन तथा आचरण करना।

(इनका विशेष वर्णन भगवद्गीताके १६ वें अध्यायमें देखिये।)

शेष भगवत्कृपा।

(५)

कन्याके शीघ्र विवाहका मन्त्र

एक बड़े खानदानकी लड़कीका पत्र है। उसके माता-पिता चार सालसे उसके विवाहके लिये उद्योगशील तथा बड़े चिन्तित हैं, पर विवाह हो नहीं पा रहा है। लड़की भी माता-पिताके दुःखसे दुखी है। कभी-कभी तो उसके मनमें आत्महत्या करनेतकके बुरे विचार आ जाते हैं। वह उपाय पूछ रही है।

इस प्रकारकी स्थितिवाली लड़कियोंकी संख्या समाजमें बहुत अधिक है। यह बड़े ही दुःखकी बात है कि दहेजके अभावसे और आजकलके प्रायः शिक्षित लड़कोंकी मनोवृत्तिके कारण लड़कियोंके विवाह नहीं हो पा रहे हैं और घर-घर ऐसी कठिन समस्याएँ आ रही हैं। ऐसे लड़कोंको तथा उनके अभिभावकोंको तैयार होना चाहिये, जो बिना दहेजके विवाह करनेको प्रस्तुत हों।

पत्र-लेखिका बहिनसे अनुरोध है कि वे कातरहृदयसे भगवान्‌से प्रार्थना करें और प्रतिदिन माता पार्वतीजीके मँढवाये हुए चित्रपर चन्दन-पुष्प चढ़ाकर नीचे लिखे मन्त्रकी ११ मालाका जप करें। ११ मालाका न हो सके तो ५ माला (१०८ दानोंकी एक माला) का जप अवश्य करें तथा पार्वती मातासे प्रार्थना करें। इससे कई जगह बहुत शीघ्र सफलता मिली है। मन्त्र यह है—

हे गौरि शंकरार्धाङ्गि यथा त्वं शंकरप्रिया।
तथा मां कुरु कल्याणि कान्तकान्तां सुदुर्लभाम्॥

पत्र-लेखिका बहिन अपना नाम-पता लिख दें, जिससे कभी उनके कामके लिये कोई सूचना देनी हो तो दी जा सके।

शेष भगवत्कृपा।

एकान्त-आश्रय

जब चारों दिशामें घमंड-भरे दुखरूप घने घन घेरते हैं।
जब स्यार समान निराशा-निशामें कुस्वप्न 'कहाँ-कहाँ' टेरते हैं।
बिजली-सी हिलातीं हृदय जब हूकें तथा दृग वारि बखेरते हैं।
तब हो गिरिधारी दयालु दयाकर सौख्य-सुदर्शन फेरते हैं॥१॥

दिन भी जब होते तमोमय हैं, जब मित्र भी भौंह तरेरते हैं।
सब ओर भयावने रूप धरे भय-भूधर आ भटभेरते हैं।
हट जाती धरा तलवोंके तलेसे, खअंग भी सीधे न हेरते हैं।
तब गोदमें लेके दयालु हमें, कर प्रेमसे पीठ पै फेरते हैं॥२॥

जब होती उमंगें विलीन सभी, दल बाँध कुचक्र दरेरते हैं।
मनमें जब वाम परिस्थिति-पुञ्ज, कुभावोंके मण्डल घेरते हैं।
जगको जब शून्यका पा प्रतिरूप, निराश्रय हो हम टेरते हैं।
तब भूले हमारे पगोंको पिता निज पावन पंथमें फेरते हैं॥३॥

शुद्ध कामनासे जब जीवन बिताते हुए जीव पड़ जाते भव पङ्किल प्रवाहमें।
तब वे दयालु दृग उगल-उगल मोती आके सेतु रूप बिछ जाते उस राहमें।
कहते वही हैं असहाय अपनेको यहाँ, रहते नहीं जो चंचरीक बन चाहमें।
झुलसा सकी न काली नाग फुफकार जिन्हें, होते हैं द्रवित वे ही एक दीन-आहमें॥

—रामनारायण मिश्र, एम० एस्-सी०

चर्बीरहित साबुन बनानेवालोंके नाम-पते

नीचे चर्बीरहित साबुन आदि उत्पादकोंके नाम-पते पदार्थोंकी नामावलीसहित छापे जा रहे हैं। जहाँतक विश्वास है, ये लोग सूचीके अनुसार चर्बीरहित पदार्थ ही बनाते हैं। पर यदि किन्हींको किसीके सम्बन्धमें यह जानकारी हो कि अमुक पदार्थ चर्बीरहित नहीं है—या संदेह ही हो तो वे उस पदार्थको न बरतें तथा हमें भी सूचना देनेकी कृपा करें।

'कल्याण'में किसी प्रकारका विज्ञापन नहीं छापा जाता। किंतु यह विज्ञापन नहीं है। यह सूची तो केवल साबुन बरतनेवालोंकी सुविधाके लिये उन लोगोंके विशेष आग्रहपर प्रकाशित की जा रही है। सर्वोत्तम तो यह है कि साबुनका व्यवहार ही नहीं किया जाय और यदि किया जाय तो साबुन घरमें बना ली जाय। अब आगे कोई नाम या सूची भरसक प्रकाशित नहीं की जायगी।

उत्पादक—	पदार्थ—
१—श्रीगोविन्द-भवन कार्यालय, १५१, महात्मा गांधी रोड, **कलकत्ता—७**	कपड़ा धोनेका साबुन
२—एशियाटिक सोप कं०, ८, डलहौजी स्कायर ईस्ट, **कलकत्ता—१**	१—कपड़ा धोनेका साबुन २—नहानेका 'प्रिक्स' साबुन ३—सैनिटरी तरल साबुन।
३—बंगाल केमिकल एंड फा० वर्क्स लि०, ६, गणेशचन्द्र ऐवेन्यू, **कलकत्ता—२३**	१—कपड़ा धोनेका साबुन २—नहानेका साबुन
४—रोहतास इंडस्ट्रीज लिमिटेड, **डालमियानगर** (बिहार)	१—कपड़ा धोनेका साबुन २—नहानेका साबुन
५—अमृत वनस्पति कं० लिमिटेड, जी० टी० रोड, **गाजियाबाद** (उ० प्र०)	कपड़ा धोनेका साबुन
६—डी० सी० एम० केमिकल वर्क्स, नजफगढ़ रोड, **नई दिल्ली—१२**	कपड़ा धोनेका साबुन
७—गणेश फ्लॉर मिल कं० लिमिटेड, सब्जी मण्डी, **दिल्ली—७**	कपड़ा धोनेका साबुन
८—मोदी सोप वर्क्स, **मोदीनगर** (मेरठ)	कपड़ा धोनेका साबुन
९—जे० के० आयल एंड सोप इंडस्ट्रीज, मेघजी भवन, **बम्बई**	कपड़ा धोनेका साबुन
१०—हिंदुस्तान लिवर्स लिमिटेड, बैकबे रिक्लमेशन, **बम्बई**	१—कपड़ा धोनेका सर्फ (चूर्ण) २—इरेस्मिक क्षौरोपयोगी क्रीम, प्यालेनुमा साबुन, स्टिक
११—नन्दकिशोर खन्ना एंड सन्स, अरुण चेम्बर्स, पहली मंजिल, तारदेव रोड, **बम्बई—३४**	हाथ धोनेका तरल साबुन
१२—दी टाटा आयल मिल कं० लिमिटेड, बाम्बे हाउस, २४, ब्रूस स्ट्रीट **फोर्ट, बम्बई—१**	१—नहानेका तरल साबुन (शम्पू) २—कपड़ा धोनेका 'मेजिक' पाउडर ३—५०१ शुद्ध साबुन पाउडर

१३–कच्छ आयल ऐंड ऐलाइड इंडस्ट्रीज, माँडवी (कच्छ), गुजरात	कपड़ा धोनेका साबुन
१४–मानसिंहका आयल मिल्स, प्रा० लि०, खँडवा (म० प्र०)	कपड़ा धोनेकी छड़
१५–ऋषभदेव भगवानदास, गवान सोप मिल्स, बाजार नं० ३, दुकान नं० १३४, फीरोजपुर छावनी (पंजाब)	कपड़ा धोनेका साबुन
१६–मारवाड़ी सोप वर्क्स, भागलपुर शहर	कपड़ा धोनेका साबुन
१७–श्रीगांधी आश्रम, मनेन्द्रगढ़ (सरगुजा) (म० प्र०)	कपड़ा धोनेका साबुन
१८–श्रीगांधी आश्रम, चिरमिरी (सरगुजा) (म० प्र०)	कपड़ा धोनेका साबुन
१९–श्रीगांधी आश्रम, मगहर (उ० प्र०)	१–कपड़ा धोनेका साबुन २–नहानेका 'कबीर' साबुन
२०–मुल्तानी सोप फैक्टरी, जालंधर शहर (पंजाब)	कपड़ा धोनेका साबुन
२१–भरतपुर जिला खादी ग्रामोदय समिति, अनाहगेट, भरतपुर (राजस्थान)	कपड़ा धोनेका साबुन
२२–जैन सोप वर्क्स, पो०–जुरहरा (भरतपुर)	कपड़ा धोनेका 'पवन' साबुन
२३–दी इंडियन नैशनल सोप फैक्टरी, नमक मंडी, अमृतसर (पंजाब)	१–कपड़ा धोनेका साबुन २–नहानेका साबुन
२४–ओसवाल सोप फैक्टरी, जौहरी बाजार, जयपुर–३ (राजस्थान)	१–कपड़ा धोनेका साबुन २–नहानेका साबुन
२५–दी प्रभात सोप फैक्टरी, कमलागंज, बरेली	१–कपड़ा धोनेका साबुन २–नहानेका साबुन
२६–नन्दकिशोर सोप फैक्टरी, छपरा (बिहार)	कपड़ा धोनेका साबुन
२७–हिंदुस्तान सोप वर्क्स, बाँसमंडी, लखनऊ (उ० प्र०)	कपड़ा धोनेका साबुन
२८–सरगोधा सोप फैक्टरी, आर्यनगर, लखनऊ–४	१–कपड़ा धोनेका साबुन २–नहानेका साबुन
२९–ओमा काटेज इंडस्ट्रीज, बरपेटा रोड, (आसाम)	कपड़ा धोनेका साबुन
३०–म० प्र० खादी एवं ग्रामोद्योग परिषद्, विदिशा (म०प्र०)	कपड़ा धोनेका साबुन
३१–श्रीफूलचंदजी आलूवाले, सब्जी मंडी, वृन्दावन (मथुरा)	कपड़ा धोनेका 'व्रजवासी' साबुन
३२–मोहन सोप फैक्टरी, पीतलियोंका रास्ता, जौहरी बाजार, जयपुर (राजस्थान)	सभी प्रकारके साबुन

३३–श्रीपाण्डुरामजी अग्रवाल, साबुनवाले, मु०–सिरबोंड़ा, पो०–बलौंदा (रायपुर) (म० प्र०)	कपड़ा धोनेका साबुन
३४–श्रीरामस्वरूपजी शर्मा, पो०–**ओछापुर** (मुरेना)	कपड़ा धोनेका साबुन
३५–लघु उद्योग संघ, कार्यालय–तपोवन, आगरा रोड, **पंचवटी** (नासिक)	सभी प्रकारके साबुन
३६–पं० रामजी मिश्र, वैद्य, सी २४ । २६, कबीरचौरा, **वाराणसी** (उ० प्र०)	कपड़ा धोनेका साबुन
३७–अल्तीना सोप एंड कासनेटिक्स (भारत), ११७, सुथरा शाही, **मुजफ्फरनगर** (उ० प्र०)	१–कपड़ा धोनेका साबुन २–नहानेका साबुन
३८–श्रीहरिकिसनजी शिवदयालजी रंगा, **बालोद** (दुर्ग)	कपड़ा धोनेका साबुन
३९–शर्मा सोप फैक्टरी, **ढेंनकानाल** (उड़िसा)	कपड़ा धोनेका साबुन
४०–श्रीभागीरथी सेवा संघ, मोरीपाड़ा, **मेरठ** (उ० प्र०)	१–कपड़ा धोनेका साबुन २–नहानेका साबुन
४१–सम्पत्ति सोप फैक्टरी, गुरुवार पेठ, फूवाला चौक, **पूना शहर** (महाराष्ट्र)	कपड़ा धोनेका साबुन
४२–शिव सोप फैक्टरी, लाखन कोटड़ी, **अजमेर** (राज०)	कपड़ा धोनेका साबुन
४३–श्रीराम सोप वर्क्स, **सिवान**, (सारन)	कपड़ा धोनेका साबुन
४४–शंकर साबुन फैक्टरी, **अमोना**(जि०–देवास) (म० प्र०)	कपड़ा धोनेका साबुन
४५–श्रीदुर्गाप्रसादजी डुमरेवाला, हँड़ियापट्टी, **भागलपुर** (बिहार)	१–कपड़ा धोनेका साबुन २–नहानेका साबुन
४६–नांगलिया सोप वर्क्स, साहबगंज, **गोरखपुर**	१–कपड़ा धोनेका साबुन २–नहानेका साबुन
४७–ब्रह्महप्पा तखनअप्पानवर प्रा० लि०, **दावानग्री** (मैसूर)	कपड़ा धोनेका साबुन
४८–एस० वी० प्रॉडक्ट्स, **इरिनजलकुण्डा** (केरल)	नहानेकी 'टिकिया'
४९–केरल सोप एण्ड आयल्स लि०, **कालीकट–११** (केरल)	१–कपड़ा धोनेका साबुन २–नहानेका साबुन
५०–मैटर कै० एंड इण्डस्ट्रियल कारपो०, **मैटर डेम** (सेलम रेलवे स्टेशन)	कपड़ा धोनेकी छड़ एवं टिकिया
५१–श्रीसाधुरामजी करमचंदजी, साबुनवाले, कणक मंडी, **अमृतसर** (पंजाब)	कपड़ा धोनेका साबुन

५२–उपहार इंडस्ट्रीज, जैन मन्दिरके पास, **फीरोजपुर शहर**	१–कपड़ा धोनेका साबुन २–नहानेका साबुन
५३–चित्तौड़ जिला खादी ग्रामोद्योग संघ, **कपासन** (राज०)	कपड़ा धोनेका साबुन
५४–लैकमे लिमिटेड, द्वारा टाटा ऐंड सन्स प्रा० लिमिटेड, बाम्बे हाउस, २४, ब्रूस स्ट्रीट, **बम्बई–१**	लैकमे क्षौरोपयोगी क्रीम लैकमे क्षौरोपयोगी स्टिक
५५–मैं० कालगेट–पामोलिव (इंडिया) प्रा० लि०, स्टीलक्रेट हाउस, डी० वाछारोड, **बम्बई–१**	१–पामोलिव क्षौरोपयोगी क्रीम २–पामोलिव क्षौरोपयोगी क्रीम (ब्रुशरहित) ३–पामोलिव क्षौरोपयोगी स्टिक ४–कालगेट क्षौरोपयोगी स्टिक
५६–कलकत्ता केमिकल कं० लिमिटेड, ३५, पण्डित रोड, **कलकत्ता–२९**	१–शेवल क्षौरोपयोगी साबुन २–शेवल क्षौरोपयोगी स्टिक
५७–मॉरीसन, जे० एल० सन्स ऐंड जॉन्स (भारत) लि०, ९५, सुभास रोड, **बम्बई–१**	निवेका क्षौरोपयोगी क्रीम
५८–दयाल सोप फैक्टरी, चाँदपोल बाजार, जयपुर (राजस्थान)	कपड़ा धोनेका साबुन
५९–पारस ब्रदर्स (भारत), सिनेमा रोड, पो० रामपुरा फूल (पंजाब)	कपड़ा धोनेका साबुन
६०–सर्वोदय केन्द्र, खीमेल, पो० रानी (राजस्थान)	कपड़ा धोनेका साबुन
६१–श्रीबनवारीलाल ऐंड ब्रदर्स, भूपेन्द्र सोप वर्क्स, **धरमपुर** (हिमाचलप्रदेश)	कपड़ा धोनेका साबुन
६२–श्रीकल्याणेश्वरी सोप फैक्टरी, **बराकर** (जिला-वर्धमान) (प० बं०)	कपड़ा धोनेका साबुन
६३–भारत सोप फैक्टरी, **खामगाँव** (महाराष्ट्र)	कपड़ा धोनेका साबुन
६४–लक्ष्मी सोप सेल्स कॉर्पोरेशन गऊशाला रोड, **श्रीगंगानगर** (राजस्थान)	कपड़ा धोनेका साबुन
६५–तिलैया साबुन उद्योग, **झुमरी तिलैया** (हजारीबाग)	कपड़ा धोनेकी 'निर्मल' टिकिया
६६–गोवर्धन सोप फैक्टरी, सोजती गेटके बाहर, माली मोहल्ला, बेरिया, **जोधपुर–२४** (राज०)	कपड़ा धोनेका साबुन
६७–श्रीराधारानी इंडस्ट्रीज, **पुष्कर** (अजमेर) (राजस्थान)	१. कपड़ा धोनेका साबुन २. नहानेका साबुन
६८–अशोक सोप फैक्टरी, कोकलस मिल, ८८ / ४७३, दलेल पुरवा, **कानपुर** (उ० प्र०)	कपड़ा धोनेका साबुन

(अखिल भारत खादी ग्रामोद्योग संघद्वारा प्रमाणित सभी दुकानोंमें शुद्ध साबुन मिलता है)

पढ़ो, समझो और करो

(१)

एक वृद्धाका सद्विचार

सन् १९३१, मार्च मासकी बात है। मनियारी हाटमें मूँजकी रस्सी खरीदनेके लिये मैं एक वृद्धाकी दूकानपर गया था। दूकानपर दो-चार ग्राहक और भी बैठे हुए थे। उसी समय एक आदमी और आ गया तथा आते ही उसने कहा—'बूढ़ी माँ ! जल्द-से-जल्द मुझे एक पसेरी रस्सी दे दो, देर मत करो; मुझे गाड़ी पकड़नेके लिये अभी मनियारी (सिलौत) स्टेशनपर जाना है। उस आदमीकी जल्दी समझकर हमलोग ठहर गये। वह आदमी बेगमेंसे रुपये निकालकर दाम देकर रस्सी लेकर चल दिया, पर जल्दीमें बेग उसी जगह छोड़ गया। रस्सीके बड़े ढेरके भीतर पड़ जानेके कारण हमलोगोंकी नजर तो उस बेगपर नहीं पड़ी, किंतु अकस्मात् उस वृद्धाकी दृष्टि उसपर पड़ गयी और बेगको उठाकर उसने हमलोगोंसे कहा, 'उस आदमीको पुकारिये तो; देखिये, उसका बेग छूट गया है।' और लोग तो नहीं उठे; किंतु मैंने उठकर उसकी चारों तरफ बहुत खोज की; किंतु वह नहीं मिला।

मैंने वृद्धासे कहा—'बूढ़ी माँ ! वह तो नहीं मिला ! पर मुझे विश्वास है कि वह अवश्य आयेगा। हमलोग तो रहेंगे नहीं, अब तुम्हारा धर्म जाने।' इसपर उस वृद्धाने कहा—'सुनिये' पण्डितजी ! मैं जातिकी चमारिन हूँ। मेरा घर यहाँसे तीन मील उत्तर पड़ता है। शामतक अगर वह ग्राहक आ गया तो आ गया; नहीं तो घर जानेके समय मैं अपना पूरा पता, हाटपर रहनेवाले जो दो-चार स्थायी दूकानदार हैं, उनको लिखाकर जाऊँगी, जिससे कहीं वह आदमी अबेर-सबेर आ जाय तो उसे दिक्कत न उठानी पड़े। सुनिये, पण्डितजी ! न जाने किस पापका परिणाम है कि पति-पुत्रसे विहीन होकर रस्सीके रोजगारसे अपनी जिंदगी बिता रही हूँ। फिर इस जन्ममें भी किसीको कलपाऊँगी तो पता नहीं अगले जन्ममें क्या नतीजा होगा।'

इसके बाद हम और कुछ समझा-बुझाकर रस्सी लेकर चल दिये। किंतु अकस्मात् मेरे मनमें आया कि अच्छा होगा कि मैं शामतक ठहर ही जाऊँ और देखूँ कि वह आदमी आता है या नहीं, और यदि आ जाता है तो उस वृद्धाका व्यवहार उसके साथ कैसा होता है। रुपये भी तो उस बेगमें कम नहीं होंगे; क्योंकि बेग बड़ा-सा और भरा है।

फिर वह कहता था कि 'मुझे गाड़ी पकड़नी है', इस बातका स्मरण आनेपर, स्टेशनसे आनेके रास्तेपर हाटसे बाहर आकर मैं ठहर गया।

मैंने जो सोचा था, वही हुआ। कुछ ही देरके बाद वह द्रुत गतिसे आता हुआ दिखायी दिया। मैं भी उस आदमीके पीछे-पीछे चल पड़ा। हाटमें आनेपर उस वृद्धासे छिपकर मैं खड़ा हो गया। उस आदमीने आते ही वृद्धासे कहा—'बूढ़ी माँ ! मेरा बेग छूट गया है।' वृद्धाने पूछा—'किस रंगका है और उसमें क्या चीजें हैं ?' उसने कहा—'बेग काला है और उसमें अब आठ सौ छप्पन रुपये होंगे, साथ ही चाँदीके चार बटन भी उसमें होंगे।' वृद्धाने बेग उस आदमीके हाथमें देकर कहा—'लीजिये, अपने रुपये गिन लीजिये।' बेग लेकर रुपये गिन लेनेके बाद उस आदमीने कहा—बिल्कुल ठीक है, धन्यवाद !' फिर वृद्धाने कहा—'अच्छा, बतलाइये—यहाँ तो हाट है और मेरी दूकानपर उस समय कितने लोग थे; यदि यह बेग मैं आपको नहीं देती तो आप क्या करते ?' 'रो-कलपकर रह जाता और क्या करता।'—उस आदमीने वृद्धासे कहा। बात यह है कि, 'परसों एक सज्जनके घर लड़कीकी शादी है, उसे कल आठ सौ रुपये देनेके लिये मैंने पूरी जबान दी थी। ये रुपये उसीके लिये मैं प्रबन्ध करके लिये जा रहा था। वह बिल्कुल मुझपर ही निर्भर है। इन रुपयोंके अतिरिक्त न उसके पास कोई उपाय था, न मेरे पास ही अन्य उपाय था। वह बेइज्जत होता और मैं विश्वासघाती बनता। आपने अपने सद्व्यवहारद्वारा हम दोनोंके धर्म, कर्म तथा इज्जत-आबरूको बचाकर अपूर्व त्याग दिखाकर मुझे कृतकृत्य कर दिया। अस्तु, आठ सौ रुपये मैं उस कार्यके लिये रखता हूँ। बाकी ५६) रुपये मैं आपको देकर आपसे उऋण होना चाहता हूँ।'

इसपर वृद्धाने हाथ जोड़कर कहा—'बाबूजी ! आपके रुपये थे, मैंने आपको दे दिये। इनमेंसे ५६) रुपये लेनेका मेरा क्या अधिकार है ? यद्यपि मैं बिल्कुल गँवारिन हूँ,

फिर भी मैं इतना तो जानती हूँ कि किसीका दिल दुखाकर अनुचित रीतिसे जो धन प्राप्त किया जाता है, वह कुछ ही समयमें पूर्व संचित धनको भी लेकर लापता हो जाता है। सुनिये, मैं आँखों देखी बात कह रही हूँ। मेरे घरके समीप ही एक बनियाका घर है, उसके यहाँ एक बार एक ग्राहकका १२५) रुपयेका बटुआ छूट गया। कुछ देरके बाद ग्राहकको आनेपर उस बनियेने साफ इन्कार कर दिया। वह बेचारा ग्राहक रोता-कलपता अपने घर लौट गया; किंतु उसी साल उस बनियेको तीसीके रोजगारमें हजारोंका घाटा सहना पड़ा और कुछ जमीन भी बेचनी पड़ी। वह बनिया स्वयं सबको कहा करता था—'अब ऐसा अधर्म कभी नहीं करूँगा।'

उस वृद्धाके उपदेशप्रद वचन सुनकर उस आदमीने कहा—'आपके सद्व्यवहारसे संतुष्ट होकर हम क्या कहें, क्या करें, कुछ भी समझमें नहीं आता । एक विरक्त गृहत्यागी महात्मासे भी बढ़कर आपमें निर्लोभता तथा आपका सद्-विचार सोचकर, देखकर हम बड़े आश्चर्यमें पड़ गये हैं। विद्वानोंका कहना सत्य है कि—इस रत्नगर्भा वसुंधरामें, कितने रत्न प्रकट और अप्रकट भरे पड़े हैं, जिनका पता पाना दुस्तर है। कौन कह सकता है कि आप-जैसी अभावमें पड़ी दुखियाके हृदयमें भी ऐसा सद्विचार होगा। एक राजाका राज्य-परित्याग तथा आप-जैसी दुखियाका यह त्याग क्या बराबर नहीं हैं ? हमारी समझमें तो आपका यह त्याग उससे बढ़कर है।' इस प्रकार उस वृद्धाके सद्-व्यवहारकी सराहना करता हुआ वह आदमी मनियारी (सिलौत) स्टेशनकी ओर चला गया और मैं भी उस वृद्धाको बार-बार धन्यवाद देकर अपने घर चला आया।

—पं० रामविलास मिश्र, मनियारी

(२)

मेहमानका संकोच दूर किया

लगभग चालीस वर्ष पहलेकी बात होगी। मेरे एक मित्र गुजरातके किसी गाँवमें रहते थे। गरीब स्थिति थी। जैसे-तैसे मैट्रिक पास किया। कालेजमें पढ़नेकी बड़ी इच्छा, पर पैसेकी व्यवस्था नहीं।

इनके जान-पहचानके एक सज्जनसे बम्बईके एक प्रसिद्ध हाईकोर्टके जजके साथ अच्छा परिचय था। उन्होंने जज-साहबके नाम एक विनयभरा पत्र लिख दिया। इनके लिये कुछ हो सके तो वे सहायता करें।

मेरे मित्र पत्र लेकर बम्बई आये। जज साहबसे मिलकर पत्र दिया। जज साहबने बंबईके एक बहुत ही प्रसिद्ध सर (नाहट) महानुभावको सिफारिशी पत्र लिख दिया।

मेरे मित्रको शहरकी रीति-नीतिका कुछ भी पता नहीं। किसीसे मिलने कहाँ जाना चाहिये—आफिसमें या घरपर, किस समय जाना चाहिये, इसका इनको कुछ भी ख्याल नहीं। ये तो सबेरे ही सीधे मालाबार हिलके एक महल-सरीखे मकानपर पहुँचनेके लिये निकल पड़े। आठ बजते-बजते मकान ढूँढ़कर उसके अंदर पहुँच गये और नौकरके हाथ पत्र भीतर भेज दिया।

मेरे मित्रको बैठनेके लिये कहा गया। थोड़ी देरमें सर—नाहट महोदय आये। मेरे मित्रसे सब बातें पूछीं और उनके शिक्षाकी तथा फीस आदिकी सारी व्यवस्था कर देनेका विश्वास दिलाया।

फिर बातचीतमें पूछा—'बंबईमें कहाँ ठहरे हो ? घरसे सुबह कब निकले थे ? पैदल चलकर आये या टैक्सीमें ? सुबहका समय है—नाश्ता किया या नहीं ?' आदि—

मेरे मित्रने उचित उत्तर देकर सब बातें बता दीं, पर नाश्ता न करनेपर भी झूठ बोल गये कि नाश्ता करके आया हूँ। उलटे-सीधे सवाल करनेपर आखिर पता लग गया कि इन भाईने नाश्ता नहीं किया है। अपने नाश्ताका समय हो गया था, इससे सर—नाहट महोदय मेरे मित्रको अपने साथ ही भोजन-कक्षमें ले गये।

वहाँ सर—नाहट महोदयकी पत्नी, उनके तीन लड़के और एक लड़की बैठे थे। सबने मेरे मित्रका स्वागत करके उन्हें बैठाया।

मेरा मित्र तो यह सब क्या हो रहा है—देखकर भौंचक्का-सा रह गया। उसने कभी ऐसा भोजनका कमरा नहीं देखा था—कल्पना भी नहीं की थी। रोशनीका कीमती झाड़ लटक रहा था। टेबलपर चाँदीके प्लेट, काँटा, चम्मच, छुरी रखे थे। भाँति-भाँतिकी तथा विविध प्रकारकी वानगियों-से टेबल लचक रहा था।

सर साहेबने अपने मेहमानको अपने मनकी चीज प्लेटमें लेकर खाना शुरू करनेको कहा। मेरे मित्रने घबराकर उत्तर दिया—'साहेब! मुझे छुरी-काँटा-चम्मचसे खाना बिल्कुल नहीं आता।'

सर साहबने धीरजसे कहा—'कुछ नहीं, इसमें क्या है? आप अपने हाथसे खाइये। अब बंबईमें रहेंगे, तब धीरे-धीरे सब सीख जायँगे।'

फिर, अपने मेहमानको बुरा न लगे, इसके लिये सर साहबने टेबल बॉयको कहा कि छुरी, काँटा, चम्मच—सभी टेबलसे उठा लो।' उस दिन मेहमानकी मान-प्रतिष्ठाके लिये (सभीने) हाथसे खाया।

अखण्ड आनन्द दाराँ इंजनेर

(३)

रामरक्षास्तोत्रका चमत्कार

रामरक्षास्तोत्र और उसके अद्भुत चमत्कारका वर्णन 'कल्याण' जनवरी सन् १९६३ में छपा था। एक आदरणीया बहिनकी अपने परिवारमें सबसे खटपट रहती थी। पतिसे भी विशेष पटती न थी। वे बहुत दुखी रहा करती थीं। आज उन्होंने रामरक्षास्तोत्रको सिद्ध करके नियमित पाठ किया, इससे उनको लाभ हुआ। यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई; क्योंकि उस समय मेरी भी यही परिस्थिति थी। परिवारमें मैं सबसे नीच समझी जाती थी तथा पतिके द्वारा भी तिरस्कृत थी। खर्चके लिये भी एक-दो रुपये नहीं मिलते थे। इससे बहुत दुखी रहती थी।

मैंने स्तोत्रका चमत्कार पढ़कर पहले श्री··········से पत्रव्यवहार करके उनसे स्तोत्र सिद्ध करनेकी विधि पूछी। फिर आश्विनके नवरात्रमें नियमसे उठकर प्रातः नौ दिनोंतक प्रतिदिन नौ बार स्तोत्रका पाठ करने लगी। प्रत्येक पाठके समाप्त होनेपर एक गुलाबका फूल श्रीरामचन्द्रजीके अर्पित करती थी। इस प्रकार पाठ करनेके बाद कपूरसे आरती तथा वन्दना—जैसी कुछ अज्ञानीसे बन पड़ी, मैंने की। नौ दिनका पाठ पूरा होनेपर मैं प्रतिदिन नियमित रूपसे एक पाठ करने लगी। पहले तो मुझे रुपयेमें एक आना लाभ जान पड़ा। किंतु अब मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे मैं अपने पतिदेवसे संतुष्ट हूँ। मुझे तीन साल इस चमत्कारी स्तोत्रका पाठ करते हो गये हैं। श्रीदुर्गादेवीजीकी विभूति, जो घरमें ही अष्टगन्ध सामग्रीसे तैयार की जा सकती है, मैं कपड़ेसे छानकर सिन्दूरमें मिलाकर माँग भरती हूँ, जिससे मुझे दिन-पर-दिन लाभ दिखायी देता है।

—एक महिला

(४)

बड़ा कौन !

लगभग साठ वर्ष पहले कुँभारका एक लड़का हमारे यहाँ नौकरी करता था। बेसमझीके कारण उसके व्यवहारमें कुछ उच्छृङ्खलता देखकर एक दो वर्ष बाद हमने उसे नौकरीसे अलग कर दिया था।

फिर तो इस लोकोक्तिके अनुसार भादोंकी नदीका बहुत पानी बह गया। रणछोड़ (उस लड़केका नाम था) खुली मजदूरी करके अपना गुजरान चलाता था।

लगभग पंद्रह वर्ष पहले हमारे मकानकी दूसरेकी मालिकीकी एक कोठरी नीलामसे बिकनेवाली थी। हमें स्थानकी आवश्यकता थी और वह कोठरी हमारे उपयुक्त थी, इसलिये नीलाममें चाहे जिस कीमतमें हमें वह लेनी थी।

इस नीलाममें एक खरीददार रणछोड़ भी था। दूसरे खरीददार थे हमारे दूरके एक कुटुम्बी सज्जन। रणछोड़को जब पता लगा कि यह कोठरी हम ले रहे हैं, तब उसने यह कहकर अपना नाम हटा लिया कि जब उनको कोठरी लेनी है तो मैं बीचमें नहीं पड़ूँगा, वे मेरे पुराने मालिक हैं। दूसरी ओर वे हमारे कुटुम्बी थे, जिन्हें जगहकी जरूरत भी नहीं थी, तो भी वे नीलामकी बोलीमें खड़े रहे और उन्होंने हमको नुकसान पहुँचाया।

मनमें अब भी विचार आता है कि इनमें बड़ा कौन है। अशिक्षित कुँभार या अपना कहलानेवाला कुटुम्बी ! 'अखण्ड आनन्द'

—छोटालाल मानसिंग कामदार

परलोक और पुनर्जन्माङ्क 'कल्याण'का आगामी विशेषाङ्क

[सम्मान्य लेखक महानुभावोंसे सादर प्रार्थना]

भारतीय धर्म तथा भारतीय आर्य-संस्कृतिका तथा आर्य ऋषियोंका निश्चित अनुभूत सिद्धान्त है—'जीव अपने-अपने कर्मानुसार विभिन्न योनियोंमें जन्म लेकर तथा विभिन्न लोकोंमें जाकर अच्छे-बुरे कर्म-फल-भोग करता है और मानव-जीवनमें भगवत्प्राप्तिके साधन करके भगवत्साक्षात्कारके द्वारा कृतकृत्य होता है।' पुनर्जन्म, परलोक, कर्मफल-भोग और साधनाके द्वारा—अधिकारानुसार समुचित साधनाके द्वारा मानव-जीवनके चरम लक्ष्य भगवान्‌की प्राप्ति—ये हमारे स्थिर सिद्धान्त हैं। आज जो संसारमें अपराधोंकी वृद्धि हो रही है; चारों ओर असत्य, कपट, चोरी, ठगी, डकैती, बेईमानी, घूसखोरी, स्वार्थपरता, व्यभिचार, अनाचार, भ्रष्टाचार आदि बढ़ रहे हैं; गाँव-गाँव और घर-घर तथा व्यक्ति-व्यक्तिमें द्वेष, कलह, द्रोह, वैर तथा हिंसा-प्रतिहिंसाकी वृद्धि हो रही है; भगवान् और धर्मको भूलकर लोग पापके पथपर शौकसे अग्रसर हो रहे हैं और इसीको उन्नति, प्रगति, विकास और उत्थान मानकर गौरव किया जा रहा है; एक दूसरेके प्रति अविश्वास, एक दूसरेको हानि पहुँचाने तथा गिरानेकी भावना और क्रिया, मनमाना भ्रष्ट खान-पान, नीच विलासिता, भोग-परायणता आदि जीवनके स्वभाव बनते जा रहे हैं—इसका एक प्रधान कारण है—भगवान्‌में, कर्मफलमें, पुनर्जन्ममें और परलोकमें विश्वासका कम हो जाना या विश्वासका न रहना। इस मिटते हुए विश्वासको सुरक्षित रखना है, सोये हुएको जगाना है और मरे हुएको पुनः जीवनदान देना है। तभी संसारका कल्याण हो सकेगा। इसी उद्देश्यसे आगामी वर्ष 'कल्याण'का 'परलोक और पुनर्जन्म' नामक विशेषाङ्क प्रकाशित करना निश्चित किया गया है।

कुछ विद्वानोंने इस अङ्कके लिये विषय-सूची बना दी है, जिसे संक्षेप करके नीचे दिया जा रहा है। संक्षेप करनेपर भी सूची बहुत विस्तृत है—विद्वान् सूचीनिर्माताओंने लेखक महानुभावोंकी सुविधाकी दृष्टिसे एक ही विषयके छोटे-छोटे अंश बनाकर उनको अलग-अलग लिख दिया है। लेखक महोदय छोटे-छोटे विषयोंपर लंबे-लंबे लेख न लिखकर छोटे विषयपर छोटा-सा या बहुतसे छोटे-छोटे विषयोंपर एक ही साथ प्रकाश डालनेवाला लेख लिखनेकी कृपा करें।

लेख, जहाँतक हो, अगस्तके पहले सप्ताहतक मिल जाना चाहिये। लेख छोटा हो, स्पष्ट तथा साफ अक्षरोंमें कागजकी एक ओर हासिया छोड़कर लिखा जाय। विषयका स्पष्टीकरण हो, पर एक ही बातकी बार-बार पुनरुक्ति न की जाय। लेख हिंदीके अतिरिक्त संस्कृत, बँगला, गुजराती, मराठी और अंग्रेजीमें भी भेज सकते हैं। एक ही विषयपर बहुत लेख आ जानेपर सब लेख नहीं छप सकेंगे, यह बात लेखक महानुभाव ध्यानमें रक्खें और उस अवस्थामें कृपया क्षमा करें। लेखक महानुभावोंसे पुनः प्रार्थना है कि अपने-अपने विषयपर अनुभूत तथा युक्तिपूर्ण विवेचनयुक्त निबन्ध भेजनेकी कृपा करें।

विनीत निवेदक—**सम्पादक**

विषय-सूची

४७–कर्माशय-रहस्य तथा वासना-रहस्य एवं उनमें स्वरूप-गत भेद।
४८–कर्त्ताके अनुसार कर्मभेद—
(क) जनक कर्म।
(ख) उपष्टम्भक कर्म।
(ग) उत्पीडक कर्म।
(घ) उपघातक कर्म।
४९–जन्मकालमें फलदानके पर्यायानुसार कर्मभेद—
(क) गुरुकर्म।
(ख) मरणासन्न कर्म।
(ग) आचरितक कर्म।
(घ) कृत कर्म।
५०–प्रवृत्तिकाल—फलप्रदानकालके अनुसार कर्मभेद।
(क) दृष्टधर्म-वेदनीय कर्म।
(ख) उपपथ-वेदनीय कर्म।
(ग) अपर-पर्याय-वेदनीय कर्म।
(घ) भूतपूर्व कर्म।
५१–फलदानके स्थानके अनुसार कर्मभेद।
(क) कामधातुमें फलदायक कर्म।
(ख) रूपधातुमें फलदायक कर्म।
(ग) अरूपधातुमें फलदायक कर्म।
५२–कर्मसम्पादन-स्थान—मनुष्यलोक
५३–सत्कर्म-भोग-स्थान—विभिन्न देवलोक।
५४–दुष्कृतिके भोग-स्थान—निम्नयोनियाँ तथा नरकादि।
५५–प्रायश्चित्त-तत्त्व, प्रायश्चित्तसे दुष्कृति-नाश।
५६–कर्म तथा फलका कार्य-कारण-सम्बन्ध।
५७–एक कर्मसे विभिन्न फल तथा विभिन्न कर्मसमुच्चयसे एक फल।
५८–कर्मफलका विभिन्न योनियोंसे सम्बन्ध।
५९–जीवोंके कृतकर्मका विचार, कर्मसाम्य और मलपाक।
६०–व्यष्टिकर्म और समष्टिकर्म।
६१–निष्काम कर्मयोगद्वारा कर्मफलसे विमुक्ति।
६२–ज्ञानाग्निसे कर्मोंका भस्मीभूत होना।
६३–भक्तिसे कर्मफलका भगवत्प्रेममें परिवर्त्तन।
६४–दिव्यधाम वैकुण्ठ, गोलोक, साकेतलोक, दिव्यकैलास (शिवलोक), श्रीदुर्गालोक आदिका रहस्य।
६५–प्राणोपासनासे प्राप्य ब्रह्मलोक।
६६–ब्रह्माजीकी पुरी या सभा तथा स्वर्गादि (इन्द्रलोकादि) का रहस्य।
६७–लोक-लोकान्तरका स्वरूप और विस्तार।
६८–महाकाशस्थित और चित्ताकाशस्थित विभिन्न लोक-लोकान्तर।
६९–विश्व-विस्तार—ब्रह्माण्ड, प्रकृत्यण्ड, मायाण्ड और शाक्ताण्ड।
७०–विभिन्न धामोंके पारस्परिक सम्बन्ध और किस साधनसे किस धामकी प्राप्ति।
७१–भूलोक—भुवनोंका (भूर्भुवःस्वः आदिका) विस्तार।
७२–लोकाकाश और अलोकाकाश।
७३–पातालादि अधोलोकोंकी संख्या और स्वरूप।
७४–तत्त्वभेद तथा भुवनभेद।
७५–सप्तभूमिका विवरण।
७६–मनुष्यलोकसे ऊपर विभिन्न देवभूमियाँ।
७७–दिक्पाल, लोकपाल तथा उनकी पुरियाँ।
७८–सुकृतिसे प्राप्त परलोक तथा ज्ञान एवं भक्तिसे प्राप्त परलोकका भेद।
७९–पारलौकिक सुख-दुःखादिका भोगकालीन नियामक।
८०–यहाँके प्राणियोंका ऊपर तथा नीचेके लोकोंमें गमन।
८१–विभिन्न लोकोंके प्राणियों और इहलोकके प्राणियोंका सम्बन्ध।
८२–परलोकके प्राणियोंका इहलोकमें आगमन।
८३–सिद्ध तथा योगी पुरुषोंका परलोकगमन।
८४–देवर्षि नारदजीकी विभिन्न लोकोंमें अबाध गति।
८५–ग्रहों तथा तारोंके लोक और नक्षत्र-लोकके प्राणी।
८६–अध्यात्मविद्या और परलोक-विद्याके भेद।
८७–शब्दका प्रभाव और गुण तथा शब्दका स्थायित्व।
८८–पूर्ण दिव्यदृष्टि और अपेक्षाकृत दिव्यदृष्टि।
८९–सतीका सतीत्व और पतिलोक-गमन तथा पतिलोकका स्वरूप।
९०–लोकातीत स्थिति।
९१–लोकालोक पर्वत।
९२–स्वर्गके प्रकार—ज्ञानहीन पुण्यसे प्राप्य तथा ज्ञान-मिश्रित पुण्यसे प्राप्य—
(क) ज्ञानहीन पुण्यकर्मसे प्राप्य स्वर्गलोक—जिसके अधिष्ठाता इन्द्रदेव हैं, यहाँसे पुण्य समाप्त होनेपर जीवका पतन होता है—'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
(ख) ज्ञानयुक्त पुण्यकर्मसे प्राप्य स्वर्गलोकके अन्तर्गत महर्लोक, तपोलोक, सत्यलोक हैं, यहाँ उसके भोग समाप्त होनेपर पतन नहीं होता, सत्यलोकतक ऊर्ध्वगति होती है।
९३–स्वर्गके उपरान्त जीवकी गतियाँ, ऊर्ध्वस्वर्ग तथा अधःस्वर्गके भेद।
९४–स्वर्ग-नरककी वास्तविकता और उसका वैज्ञानिक आधार।

'कल्याण' का चालू वर्षका विशेषाङ्क उपासना-अङ्क अभी प्राप्य है

कल्याणका जनवरी १९६८ का विशेषाङ्क उपासना-अङ्क है। इस अङ्कमें उपासना-सम्बन्धी प्रायः सभी विषयों, विभिन्न उपासना-पद्धतियों तथा उपासनाके विविध उपयोगी अङ्गोंपर अनुभवी साधकों, विद्वान्, शास्त्रज्ञ एवं उपासना-तत्त्वके ज्ञाता तथा इस विषयके अधिकारी पुरुषोंकी लेखनीसे लिखे हुए निबन्धोंका एक अन्यतम संग्रह है।

उपासना-सम्बन्धी इस अनुपम ग्रन्थका अवलोकन करके देशके विशिष्ट विद्वान् शास्त्रज्ञोंने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

इसमें बहुरंगे चित्र १६, दोरंगा १ और रेखाचित्र ३४ हैं। साथमें ८ यन्त्र-चित्र भी दिये गये हैं। वार्षिक मू० ९.००।

विशेषाङ्क बहुत थोड़ा रह गया है, अतः कल्याणके प्रेमी पाठक-पाठिकाएँ अपने इष्ट-मित्रोंको ग्राहक बनानेमें शीघ्रता करनेकी कृपा करेंगे।

व्यवस्थापक—'कल्याण', पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

श्रीगीता एवं श्रीरामायणकी आगामी परीक्षाएँ

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस—ये दो ऐसे परम उपयोगी ग्रन्थ हैं, जिनको प्रायः सभी श्रेणीके लोग विशेष आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। 'कल्याण'के पाठक जानते हैं कि श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समितिके द्वारा धार्मिक और आध्यात्मिक सद्भावोंके प्रसारार्थ इन ग्रन्थोंकी परीक्षाओंकी व्यवस्था है। उत्तीर्ण छात्रोंको योग्यतानुसार पुरस्कार भी दिया जाता है।

परीक्षाओंके लिये स्थान-स्थानपर लगभग ५०० केन्द्र स्थापित हैं। नियमानुसार और भी स्थापित किये जा सकते हैं।

आगामी गीता-परीक्षाएँ दिनाङ्क १७, १८ नवम्बर १९६८ को एवं रामायणकी परीक्षाएँ दिनाङ्क ५, ६ जनवरी १९६९ को होनेवाली हैं।

केन्द्र-व्यवस्थापकोंसे निवेदन है कि सभी परीक्षाओंके लिये आवेदन-पत्र एवं नवीन केन्द्रोंके लिये प्रार्थना-पत्र दिनाङ्क ३० अगस्त १९६८ तक भेज देनेकी कृपा करें।

विशेष जानकारीके लिये पत्र लिखकर नियमावली मँगा सकते हैं।

व्यवस्थापक—

श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति, गीताभवन, पो० स्वर्गाश्रम,
(पौड़ी-गढ़वाल) वाया ऋषिकेश, उत्तर-प्रदेश

रजि० सं० एल० १७५